भारतीयदर्शनसार

लेखक

सर्वज्ञभूषण

संस्कृतगङ्गा, दारागञ्ज, प्रयाग
संरचना प्रकाशन, इलाहाबाद

भारतीयदर्शनसार

लेखक	सर्वज्ञभूषण
ISBN	978-93-84999-72-8
प्रकाशक	संरचना प्रकाशन 30, थार्नहिल रोड, सिविल लाइंस, इलाहाबाद - 211001 संस्कृतगङ्गा 63/59, मोरी, दारागंज, इलाहाबाद - 211006
©	लेखक
संस्करण	वर्ष 2017
मूल्य	` **250/-** (दो सौ पचास रुपये मात्र)
वितरक	1. संस्कृतगङ्गा, 59, मोरी, दारागंज, इलाहाबाद - 211006 मो.- 7800138404 2. राजू पुस्तक केन्द्र अल्लापुर, इलाहाबाद 3. राका प्रकाशन, 25ए, महात्मा गाँधी मार्ग, काफी हाउस के पास, सिविल लाइंस, इलाहाबाद - 211001 मो.- 9453460552
मुद्रक	एकेडमी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद

प्राग्वाचिक

प्रिय संस्कृतबन्धो ! नमः संस्कृताय।

इस पुस्तक में भारतीय दर्शन से सम्बद्ध आस्तिक एवं नास्तिक दर्शन से जुड़े सभी प्रमुख दार्शनिक प्रस्थानों का सार प्रस्तुत किया गया है छः आस्तिक दर्शनों में सांख्य,योग,न्याय,वैशेषिक,वेदान्त,मीमांसा के प्रसिद्ध प्रकरणग्रन्थों को इस पुस्तक का विषय बनाया गया है।

यथा- सांख्यदर्शन का प्रतिनिधित्व ईश्वरकृष्ण की **सांख्यकारिका**,योगदर्शन में पतञ्जलि का **योगसूत्र**,न्यायदर्शन का प्रतिनिधित्व केशवमिश्र की **तर्कभाषा**, वैशेषिकदर्शन का प्रतिनिधित्व अन्नम्भट्ट का **तर्कसंग्रह**,वेदान्तदर्शन का प्रतिनिधित्व योगीन्द्र सदानन्द का **वेदान्तसार** तथा मीमांसादर्शन का प्रतिनिधित्व करने वाले लौगाक्षिभास्कर के **अर्थसंग्रह** नामक ग्रन्थ को इस पुस्तक का विषय बनाया गया है,वैसे तो पुस्तकीय दुकानों में अनेक दार्शनिक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं किन्तु दर्शन का सारतत्त्व प्रस्तुत करने वाली यह प्रथम पुस्तक होगी। जैसे-वेदान्त का सार वेदान्तसार नामक ग्रन्थ में बताया गया है, उसी तरह सांख्य आदि आस्तिक दर्शन तथा चार्वाक आदि नास्तिक दर्शनों का सार इस 'भारतीयदर्शनसार' नामक पुस्तक में बताने का प्रयास किया गया है।

दार्शनिक गूढ़ विषयों को तालिका के माध्यम से सरल करने का प्रयास किया गया है। पुस्तक लेखन में बिन्दुवार शैली अपनायी गयी है, जिससे विद्यार्थियों को दार्शनिक विषयों का शीघ्र एवं सहज बोध हो सके। विशेषकर प्रतियोगी छात्रों को ध्यान में रखकर इस पुस्तक का लेखन किया गया है। अनावश्यक विस्तार से बचा गया है, ताकि ''**भारतीयदर्शनसार**'' इस नाम की सार्थकता बनी रहे।

इस पुस्तक के लेखन में जिन मित्रों का परोक्ष अपरोक्ष सहयोग,समर्थन एवं उत्साह मिलता रहा उनमें सत्यप्रकाश,अम्बिकेश,सुमन,वीरेन्द्र, साधना,केदारनाथ,योगेश,देवमूरत, राकेश,गोपेश,पवन,अम्बर आदि का नाम उल्लेखनीय है।

इस पुस्तक के लेखन में गुरुजनों की विशेष कृपा रही जिनमें सूक्ष्मशरीर से सदैव साथ रहने वाले एवं मेरा सतत मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद प्रदान करने वाले श्री अनन्त प्रसाद त्रिपाठी (शास्त्री जी,गहनौआ रीवा मध्यप्रदेश) एवं स्थूल शरीर से प्रो. ललित कुमार त्रिपाठी (गङ्गानाथ झा परिसर रा.सं.संस्थान इलाहाबाद) का सदैव आशीर्वाद प्राप्त होता रहा है। साथ ही मेरे माता-पिता का शुभाशीष,एवं भाइयों का सहयोग मिला।

- भवदीय

सर्वज्ञभूषण

विषयानुक्रम

1. भारतीय दर्शन की भूमिका 3
2. सांख्यकारिका 5
3. योगदर्शन 23
4. तर्कभाषा (न्यायदर्शन) 34
5. तर्कसंग्रह 54
6. वेदान्तसार 93
7. अर्थसंग्रह 115
8. श्रीमद्भगवद्गीता 134
9. चार्वाक दर्शन 156

❑❑

1. भारतीय दर्शन की भूमिका

- दर्शन शब्द 'दृश्' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है। दर्शन शब्द का अर्थ है- 'जिसके द्वारा किसी वस्तु को देखा या समझा जाय।'
- भारतीय दर्शन की दो शाखाएँ हैं - आस्तिक तथा नास्तिक। जो दर्शन वेदों को प्रमाण रूप में स्वीकार करते हैं, उन्हें **आस्तिक** दर्शन कहते हैं, जिनमें सांख्य-योग, न्याय -वैशेषिक, पूर्वमीमांसा एवं उत्तरमीमांसा (वेदान्त) की गणना होती है।
- जो दर्शन वेदों को प्रमाण रूप में स्वीकार नहीं करते हैं उन्हें **'नास्तिक दर्शन'** कहते हैं, जिनमें चार्वाक, बौद्ध, जैन प्रमुख रूप से हैं।
- सांख्य- योग, न्याय- वैशेषिक, पूर्वमीमांसा- उत्तरमीमांसा इन्हें 'षड्दर्शन' भी कहते हैं।

भरतीयदर्शन

आस्तिकदर्शन	नास्तिकदर्शन
(सांख्य ,योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त)	(चार्वाक,बौद्ध,जैन)

दर्शन	-	**प्रवर्तक आचार्य**
सांख्य	-	कपिल
योग	-	पतञ्जलि
न्याय	-	गौतम
वैशेषिक	-	कणाद
पूर्वमीमांसा	-	जैमिनि
उत्तरमीमांसा (वेदान्त)	-	बादरायण
चार्वाक	-	बृहस्पति/चार्वाक
बौद्ध	-	महात्मा गौतम बुद्ध
जैन	-	ऋषभदेव/महावीर स्वामी

- नास्तिकदर्शन को वेद विरोधी दर्शन भी कहा जाता है -**'नास्तिको वेदनिन्दकः'**
- चार्वाकदर्शन भौतिकवादी दर्शन है, जिसे **लोकायत** नाम से भी जाना जाता है।
- सांख्य एवं योग एक दूसरे के पूरक दर्शन हैं। सांख्य ईश्वर की सत्ता नहीं मानता जबकि योग ईश्वर की सत्ता मानता है। इसीलिए सांख्य को **'निरीश्वर सांख्य'** तथा योग को **'सेश्वर सांख्य'** भी कहते हैं।

दर्शन	ग्रन्थ	अध्याय	सूत्र	प्रमाण	पदार्थ (तत्त्व)	प्रमुख सिद्धान्त/वाद
सांख्य	सांख्यसूत्र	6	537	तीन प्रमाण	25	सत्कार्यवाद परिणामवाद
योग	योगसूत्र	4पाद	195	तीन प्रमाण	26	सत्कार्यवाद सेश्वरवाद
न्याय	न्यायसूत्र	5	60-70	चार प्रमाण	16	असत्कार्यवाद पिठरपाकवाद
वैशेषिक	वैशेषिकसूत्र	10	370	दो प्रमाण	7	परमाणुवाद पीलुपाकवाद
पूर्वमीमांसा	मीमांसासूत्र	12	2644	6 प्रमाण		अपूर्ववाद
उत्तरमीमांसा (वेदान्त)	ब्रह्मसूत्र	4	555	6 प्रमाण	2	विवर्तवाद मायावाद

- बौद्धदर्शन के चार सम्प्रदायों का उल्लेख प्राप्त होता है वैभाषिक,सौत्रान्तिक, विज्ञानवादी, शून्यवादी।
- नागार्जुन बौद्धदर्शन के प्राचीन आचार्य हैं।
- जैनदर्शन के प्राचीन आचार्य - उमास्वाति हैं।
- अकलंकदेव, विद्यानन्द, प्रभासचन्द्र, हेमचन्द्रसूरि, मल्लिषेण आदि जैनदर्शन के प्रमुख आचार्य हैं
- न्यायदर्शन के प्रवर्तक आचार्य गौतम हैं। न्यायदर्शन को 'तर्कप्रधानदर्शन' भी कहते हैं।
- न्यायदर्शन में आगम प्रमाण के द्वारा ईश्वर की सिद्धि की गई है।
- सर्वदर्शनसंग्रह में वैशेषिक दर्शन को **'औलूक्य दर्शन'** कहा गया है।
- पूर्वमीमांसादर्शन के प्रणेता आचार्य जैमिनि हैं।
- पूर्वमीमांसादर्शन वेद को स्वतन्त्र एवं स्वतः प्रमाण के रूप में स्वीकार करता है।

❑❑

2. सांख्यकारिका

- सांख्यदर्शन सबसे प्राचीन दर्शन है।
- सम् उपसर्गपूर्वक √ख्या प्रकथने धातु से अङ् प्रत्यय करने के बाद 'टाप्' प्रत्यय करने से 'संख्या' शब्द बनता है। पुनः संख्या पद से ''तस्येदम्'' सूत्र द्वारा 'अण्' प्रत्यय करने पर ''सांख्य'' पद निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है 'गणना से सम्बन्धित' अथवा 'गणना से जानने योग्य', क्योंकि सांख्यदर्शन में तत्त्वों की गणना अर्थात् संख्या को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है।
- सांख्यदर्शन के प्राचीन आचार्य **कपिलमुनि** हैं।
- सांख्यदर्शन में 25 तत्त्वों की चर्चा है।
- सांख्यदर्शन के अनुसार मुख्यरूप से दो तत्त्व नित्य हैं - पुरुष तथा प्रकृति।
- सांख्यदर्शन के प्रमुख आचार्य- कपिल, आसुरि, पञ्चशिख, विन्ध्यवासी, जैगीषव्य, वार्षगण्य, ईश्वरकृष्ण आदि हैं
- सांख्यदर्शन के प्रमुखग्रन्थ- सांख्यसूत्र, षष्टितन्त्र, राजवार्तिक, एपिकसांख्य, अर्वाचीन सांख्यसूत्र आदि हैं।
- सांख्यसूत्र की प्रमुख टीकाएँ- अनिरुद्धवृत्तिसार, सांख्यवृत्तिसार,सांख्यप्रवचनभाष्य, लघुसांख्यवृत्ति, तत्त्वसमास अथवा समाससूत्र हैं।
- **'सांख्यकारिका'** सांख्यदर्शन का प्रकरणग्रन्थ है जिसके लेखक **ईश्वरकृष्ण** हैं।
- ईश्वरकृष्ण के गुरु **'पञ्चशिख'** माने जाते हैं।
- पञ्चशिख के गुरु- **'आसुरि'** माने जाते हैं।
- सांख्यकारिका में **सत्तर कारिकायें** हैं जो **आर्या छन्द** में निबद्ध हैं।
- सांख्यकारिका का अपरनाम- सांख्यसप्तति, हिरण्यसप्तति अथवा सुवर्णसप्तति है।
- सांख्यकारिका की टीकाएँ - गौडपादभाष्य, माठरवृत्ति, जयमङ्गला, युक्तिदीपिका, सांख्यतत्त्वकौमुदी आदि हैं।
- सत्कार्यवाद सांख्यदर्शन का प्रमुख सिद्धान्त है जो छान्दोग्योपनिषद् में भी प्राप्त होता है।
- सांख्यदर्शन के दो प्रमुख सिद्धान्त हैं - सत्कार्यवाद एवं पुरुषबहुत्व।
- सांख्यशास्त्र के अनुसार त्रिविध दुःख हैं - आध्यात्मिक, आधिभौतिक,आधिदैविक

दुःखत्रय

- आध्यात्मिक दुःख- काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, भय, विषाद आदि से होने वाला दुःख।
- आधिभौतिक दुःख- मनुष्य, पशु, सर्प आदि से होने वाला दुःख।

- आधिदैविक दुःख- यक्ष, राक्षस , भूत, प्रेत आदि से होने वाला दुःख।
- शारीरिक- वात, पित्त, कफ आदि से उत्पन्न दुःख।
- मानसिक- काम, क्रोध आदि से उत्पन्न दुःख।
- 'ऐकान्तिक' शब्द का अर्थ है - दुःख का अनिवार्य रूप से नष्ट हो जाना।
- 'आत्यन्तिक' शब्द का अर्थ है - जो दुःख नष्ट हुआ है उसका फिर से उत्पन्न न होना।
- लौकिक उपायों से दुःखत्रय की सार्वकालिक निवृत्ति नहीं होती।
- वात, पित्त, कफ त्रिदोष की विषमता से शारीरिक दुःख उत्पन्न होता है।
- काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या, विषाद आदि द्वारा विषयों की अप्राप्ति से उत्पन्न दुःख मानसिक दुःख हैं।
- मनुष्य, पशु, मृग, पक्षी, सर्प आदि से उत्पन्न होने वाला दुःख आधिभौतिक दुःख है।
- यक्ष, राक्षस, विनायक, ग्रह इत्यादि के दुष्ट प्रभाव से होने वाला दुःख 'आधिदैविक दुःख' है।
- वैदिक उपाय भी लौकिक उपायों के समान दुःखत्रय की ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक निवृत्ति में असमर्थ हैं।
- व्यक्त, अव्यक्त और पुरुष के ज्ञान से दुःख की निवृत्ति अधिक उत्तम होती है।
- सांख्यशास्त्र चार प्रकार से तत्त्वों का विभाजन करता है-
  (i) प्रकृति (ii) प्रकृति-विकृति (iii) केवल विकृति (iv) न प्रकृति न विकृति।
- **प्रकृति** की संख्या है- एक (मूलप्रकृति)। इसे प्रधान या अव्यक्त भी कहा जाता है।
- **प्रकृति एवं विकृति** की संख्या सात है- 'प्रकृतिविकृतयः सप्त' (का0-3)
  जो महत् , अहङ्कार तथा पञ्चतन्मात्राएँ हैं। इन्हें **कारण एवं कार्य** नाम से भी जाना जाता है।
- केवल **विकृति** अर्थात् कार्य की संख्या सोलह है। 'षोडशकस्तु विकारः' (का0-3)
  पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ,पञ्चकर्मेन्द्रियाँ, मन,पञ्चमहाभूत। इन्हें **कार्य** नाम से भी जाना जाता है।
  * पाँचज्ञानेन्द्रियाँ - श्रोत्र , नेत्र, घ्राण, त्वक्, रसना
  * पाँचकर्मेन्द्रियाँ - वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ।
  * पाँचतन्मात्रा - शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध
  * पाँचमहाभूत - आकाश, वायु, तेज , जल, पृथिवी
- सांख्य में पुरुष को न प्रकृति (कारण) तथा न विकृति (कार्य) कहा गया है-
  न प्रकृतिः न विकृतिः पुरुषः (का0-3)
- सत्त्व,रजस्,तमस् की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है 'सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः'

पुरुष

मूलप्रकृति
|
महत् (बुद्धि)
|
अहङ्कार
|
पञ्चतन्मात्रा +एकादश इन्द्रिय
|
पञ्चमहाभूत

सांख्य के अनुसार प्रमाण

- 'दृष्टमनुमानमाप्तवचनं' (का0-4) इस कथन से सांख्य तीन प्रमाण मानता है - (i) दृष्ट (प्रत्यक्ष), (ii) अनुमान तथा (iii) आप्तवचन।
- सांख्य को तीन ही प्रमाण अभीष्ट हैं (का0-4) 'त्रिविधं प्रमाणमिष्टम्'। इन्हीं तीन प्रमाणों के ज्ञान से ही प्रमेयों का ज्ञान होता है- **'प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि'**

अन्य आचार्यों द्वारा स्वीकृत प्रमाण

- चार्वाक केवल प्रत्यक्ष को प्रमाण के रूप में मानता है।
- बौद्ध-दर्शन - दो प्रमाण मानता है- (प्रत्यक्ष, अनुमान)
- सांख्य-योग - तीन प्रमाण मानता है- (प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द)
- न्याय- वैशेषिक - चार प्रमाण मानता है- (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द)
- प्रभाकर मीमांसक - पाँच प्रमाण मानते हैं- (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द ,अर्थापत्ति)
- भाट्ट मीमांसक- छः प्रमाण मानते है- (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द,अर्थापत्ति, अभाव)
- पौराणिक- आठ प्रमाण (प्रत्यक्ष, अनुमान,उपमान, शब्द,अर्थापत्ति,अभाव, सम्भव,ऐतिह्य)
- **'प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टम्'** (का0-5) प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण है। विषय से सम्बद्ध इन्द्रिय पर आश्रित बुद्धि-व्यापार या ज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।
- **'तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकम् अनुमानम्'** (का0-05) यह अनुमान प्रमाण का लक्षण है। लिङ्ग और लिङ्गी के ज्ञान से जो उत्पन्न होता है उसे अनुमान प्रमाण कहते हैं।
- सर्वप्रथम अनुमान के दो भेद होते हैं - वीतानुमान, अवीतानुमान
- वीतानुमान के दो भेद- पूर्ववत्, सामान्यतोदृष्ट।
- अवीतानुमान का एक भेद - शेषवत्।
- इस प्रकार पूर्ववत्, शेषवत् ,सामान्यतोदृष्ट के भेद से अनुमान प्रमाण के तीन भेद हैं।
- 'आप्तश्रुतिराप्तवचनम्' (का0-05) अर्थात् आप्त पुरुष की उक्ति ही शब्द प्रमाण है।
- शब्दप्रमाण को **आगमप्रमाण** या **आप्तप्रमाण** भी कहा जाता है।
- जो जिस रूप में है उसको उसी रूप में कहना आप्तवचन तथा उपदेश करने वाले को आप्तपुरुष कहते हैं।
- सामान्यविषयों का ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण से होता है।
- इन्द्रियों से दिखाई न देने वाले अर्थात् परोक्ष पदार्थों का ज्ञान अनुमान प्रमाण से होता है।
- मूलप्रकृति आदि का ज्ञान सामान्यतोदृष्ट नामक अनुमान प्रमाण से होता है।
- सांख्य के अनुसार वस्तुओं का प्रत्यक्ष आठ रूपों से नहीं होता है -

  (i) अत्यधिक दूर होने से (ii) अत्यधिक समीप होने से,
  (iii) इन्द्रियों के नाश (iv) मन की अस्थिरता से,
  (v) सूक्ष्म होने से (vi) बीच में किसी रुकावट के आ जाने से,
  (vii) समान वस्तु में मिल जाने से (viii) अपने कारण से उत्पन्न होने से।

  अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्।
  सौक्ष्म्याद् व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्च॥ (का0-07)
- प्रकृति की उपलब्धि नहीं होती है - सूक्ष्म होने के कारण।
- अभाव के कारण नहीं अपितु सूक्ष्मता के कारण प्रकृति की उपलब्धि नहीं होती है 'सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिर्नाभावात्' (का0-08)

- प्रकृति की उपलब्धि उसके कार्य से होती है, महत् आदि कार्य प्रकृति के समान एवं असमान दोनों होते हैं **'महदादि तच्च कार्यं प्रकृतिसरूपं विरूपं च'** (का0-8)
- सत्कार्यवाद सांख्यदर्शन का प्रमुख सिद्धान्त है 'सतः सत् जायते'
- सांख्य की दृष्टि में सत्कार्यवाद है- असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्। शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्।। (का-09)
- सत्कार्यवाद सिद्धान्त में पाँच हेतु हैं-
  (i) असदकरणाद् (ii) उपादानग्रहणात् (iii) सर्वसम्भवाभावात्
  (iv) शक्तस्य शक्यकरणात् (v) कारणभावात्
- सत्कार्यवाद सिद्धान्त के अनुसार - कार्य हमेशा अपने कारण रूप में विद्यमान रहता है।
- सांख्यशास्त्र के अनुसार न तो किसी वस्तु की उत्पत्ति होती है और न ही विनाश होता है।
- कार्य की उत्पत्ति का अर्थ है अव्यक्त से व्यक्त होना तथा विनाश का अर्थ है व्यक्त से अव्यक्त होना।
- मूलप्रकृति से उत्पन्न होते हैं- महद् आदि कार्य, महद् आदि कार्यों को 'व्यक्त' कहते हैं।
- प्रकृति है- त्रिगुणात्मिका, प्रधान, प्रसवधर्मिणी, अव्यक्त, जड तथा अचेतन।

अव्यक्त तथा व्यक्त पदार्थों का सादृश्य एवं वैषम्य का निरूपण

व्यक्त	अव्यक्त (प्रकृति)
हेतुमान्	अहेतुमान्
अनित्य	नित्य
अव्यापी	व्यापी
सक्रिय	निष्क्रिय
अनेक	एक
मूलकारण पर आश्रित	अनाश्रित
लिङ्गसहित	लिङ्गरहित
अवयवयुक्त	निरवयव
परतन्त्र	स्वतन्त्र

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्। (का0-10)

- महत् तत्त्व से लेकर आकाश आदि स्थूलपर्यन्त सभी पदार्थों को व्यक्त कहा जाता है।
- प्रत्यक्ष प्रमाण के विषय होते हैं- व्यक्त
- हेतुमत्- हेतु अर्थात् कारण जिसका होता है उसे हेतुमत् कहते हैं।
- अव्यक्त अर्थात् प्रकृति नित्य है क्योंकि वह किसी का कार्य नहीं होती है।
- सांख्यमत में अनित्य का अर्थ है- सूक्ष्म रूप से अपने कारण में रहने वाला।
- सांख्य में पुरुषबहुत्व के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गई है।
- सारे व्यक्त पदार्थ अपने-अपने कारण पर आश्रित होते हैं।
- व्यक्त तथा अव्यक्त का साम्य एवं पुरुष से उसके वैषम्य का निरूपण-

त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं, तद्विपरीतस्तथा च पुमान्।। (का.-11)

व्यक्त तथा अव्यक्त	पुरुष
त्रिगुणात्मक	गुण से रहित (त्रिगुणातीत)
अविवेकी	विवेकी
विषयी	अविषयी
सामान्य	असामान्य
अचेतन	चेतन
प्रसवधर्मी	अप्रसवधर्मी

- 'व्यक्तं तथा प्रधानं, तद्विपरीतस्तथा च पुमान्' (का0-11) इस कारिका में व्यक्त तथा अव्यक्त के साधर्म्य एवं पुरुष का उससे वैधर्म्य का निरूपण किया गया है।

सांख्य के त्रिविध गुण

- सांख्यानुसार तीन गुण हैं- सत्त्व, रजस् तथा तमस्। (का0-13)
- सत्त्व, रजस्, तमस् का स्वरूप है- सुख, दुःख, मोह। **प्रीत्यप्रीति-विषादात्मकाः।** (का0-12) प्रीति का अर्थ - सुख, अप्रीति का अर्थ है- दुःख तथा विषाद का अर्थ है- मोह।
- तीनों गुणों के क्रमशः कार्य हैं- प्रकाश, प्रवर्तन, नियमन। **प्रकाश- प्रवृत्तिनियमार्थाः।** (का0-12) जिसका अर्थ है- प्रकाश करना, प्रवृत्त करना, नियमन करना।
- तीनों गुणों के स्वभाव हैं- एक दूसरे को दबाना, आश्रय बनना, उद्भव या आविर्भाव **''अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च''** (का0-12)
- सत्त्व, रजस् तथा तमस् क्रमशः शान्त, घोर और मोह वृत्ति वाले हैं।

गुण	स्वरूप	कार्य/प्रयोजन	स्वभाव
सत्त्वगुण	प्रीति (सुखात्मक)	प्रकाश करना	एक दूसरे को दबाना
रजोगुण	अप्रीति (दुःखात्मक)	प्रवर्तन करना	आश्रय बनना
तमोगुण	विषाद (मोहात्मक)	नियमन करना	उद्भव या आविर्भाव करना

तीनों गुणों की विशेषताएँ-

- **'सत्त्वं लघु प्रकाशकम्'** (का0-13) सत्त्व गुण हल्का होता है अतः प्रकाशक होता है।
- **'उपष्टम्भकं चलं च रजः'** (का0-13) रजोगुण चञ्चल होता है अतः उत्तेजक होता है।
- **'गुरु वरणकमेव तमः'** तमो गुण भारी होता है अतएव अवरोधक होता है।

सत्त्व गुण	हल्का	प्रकाशक
रजो गुण	चञ्चल (प्रवृत्तिशील)	उत्तेजक
तमो गुण	भारी	अवरोधक

- तीनों गुण अर्थात् सत्त्व, रजस् तथा तमस् विरोधी स्वभाव वाले होते हुए भी **'प्रदीपवच्चार्थतो वृतिः'** (का0-13) अर्थात् दीपक के समान व्यवहार करने वाले हैं।
- सत्त्वगुण के प्रभावी होने पर व्यक्ति स्वयं को हल्का, सुखी एवं आनन्दित अनुभव करता है।
- रजोगुण के प्रभावी होने पर व्यक्ति में चंचलता एवं गतिशीलता की अनुभूति होती है।
- तमोगुण के प्रभावी होने पर किसी भी काम को करने की इच्छा न होना, शरीर में आलस्य होना, सोने आदि में प्रवृत्त होना, होता है।
- सत्त्वगुण एवं तमोगुण दोनों गुण निष्क्रिय होते हैं रजोगुण ही उन्हें क्रियाशील बनाता है।
- सत्त्व आदि तीनों गुणों के कारण अविवेकित्व इत्यादि धर्मों की सत्ता सिद्ध होती है।
- कार्य का कारण गुणों के स्वभाव से युक्त होने से मूलप्रकृति (अव्यक्त) की सत्ता सिद्ध होती है।
- अव्यक्त अर्थात् मूलप्रकृति की सत्ता सिद्ध करने वाले पाँच हेतु-

  (i) भेदानां परिमाणात् (ii) समन्वयात् (iii) शक्तितः प्रवृत्तेः

  (iv) कारणकार्यविभागात्, (v) वैश्वरूपस्य अविभागात्। (का0-15)

  अव्यक्त (प्रकृति) की सत्ता की सिद्धि

  1. भेदानां परिमाणात् (कार्यों के सीमित परिमाण से)
  2. समन्वयात् (भिन्नपदार्थों में स्थित अनुरूपता)
  3. शक्तितः प्रवृत्तेः (शक्ति के अनुसार प्रवृत्ति)
  4. कारणकार्यविभागात् (कारण और कार्य का विभाग प्राप्त होने से)
  5. वैश्वरूपस्य (सभी रूपों के एक रूप हो जाने से)
- 'भेदानां' से तात्पर्य महत् से लेकर भूमि पर्यन्त सभी कार्यों से है।
- अव्यक्त अपने तीनों गुणों के स्वरूप तीनों के स्वरूप से तीनों के मिश्रित रूप से, एक-एक गुण के आश्रय से उत्पन्न भेद या वैशिष्ट्य के कारण, परिणाम से जल के समान प्रवृत्त होता रहता है-

  'परिणामतः सलिलवत् प्रतिगुणाश्रयविशेषात्।' (का0-16)
- सृष्टि का मूल कारण अव्यक्त है जिसमें सत्त्व, रजस् तथा तमस् विद्यमान रहते हैं इन्हीं गुणों के सहयोग से मूलप्रकृति निरन्तर क्रियाशील रहती है।
- ज्ञ अर्थात् पुरुष की सत्ता सिद्ध करने वाले पाँच हेतु- संघातपरार्थत्वात्, त्रिगुणादिविपर्ययात्, अधिष्ठानात्, भोक्तृभावात्, कैवल्यार्थं प्रवृत्तेः। (का.-17)

  पुरुष की सत्ता सिद्धि

  संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्

  पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च॥ का. 17।।

1. संघातपरार्थत्वात् (संघातों का दूसरों के लिए होना)
2. त्रिगुणादिविपर्ययात् (त्रिगुणादि से विपरीत स्वभाव वाला होने से)
3. अधिष्ठानात् (त्रिगुण समूह का अधिष्ठाता होने से)
4. भोक्तृभावात् (भोग्य एवं भोक्ताभाव से)
5. कैवल्यार्थं प्रवृत्तेः (मोक्ष के लिए प्रवृत्ति देखे जाने से)

- सांख्य का पुरुष सभी शरीरों का अधिष्ठाता है।
- सांख्य का पुरुष त्रिगुणरहित होने से सबसे भिन्न है।
- पुरुषबहुत्व का सिद्धान्त सांख्य का सिद्धान्त है।
- पुरुषबहुत्व की सत्ता सिद्ध करने वाले तीन हेतु हैं-
  (i) जननमरणकरणानां (ii) अयुगपत्प्रवृत्तेः (iii) त्रैगुण्यविपर्ययात्
- जन्म, मरण तथा इन्द्रियों की व्यवस्था होने से और एक साथ प्रवृत्ति का अभाव होने से तथा तीन गुणों के भेद के कारण पुरुष बहुत्व की सत्ता सिद्ध होती है।
- जननमरणकरणानाम् में करण से अभिप्राय तीन अन्तःकरण (मन, बुद्धि, अहंकार) तथा पाँचज्ञानेन्द्रियों एवं पाँच कर्मेन्द्रियों से है।
- पुरुष के चेतन, निर्गुण, विशेष, अविषय, विवेकी एवं अप्रसवधर्मी होने के कारण साक्षित्व, कैवल्य, माध्यस्थ्य, द्रष्टृत्व एवं अकर्तृत्व (का0-19) आदि धर्मों की सिद्धि भी होती हैं।

पुरुष के धर्म

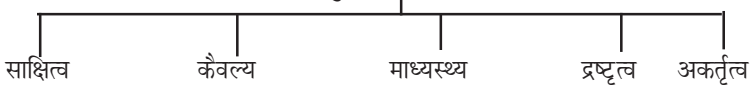

- पुरुष के संयोग से जड़ प्रकृति चेतन के समान प्रतीत होती है।
- पुरुष गुणरहित एवं अपरिणामी होने के कारण वस्तुतः कर्ता नहीं होता बल्कि उसमें कर्तापन की प्रतीति भ्रान्तिमात्र है।
- सांख्य की सृष्टि 'पङ्ग्वन्धवत्' अर्थात् लगड़ा और अन्धा के समान है। (का0-21)
- पुरुष के द्वारा प्रधान (प्रकृति) का दर्शन तथा प्रकृति (प्रधान) के द्वारा कैवल्य की प्राप्ति के लिए पुरुष और प्रकृति का संयोग अन्धे और लगड़े के समान होता है जिससे सृष्टिप्रक्रिया सम्पन्न होती है।
- पुरुष और प्रकृति के संयोग का प्रमुख रूप से दो प्रयोजन है-
  1. प्रकृति का दर्शन 2. पुरुष को कैवल्य की प्राप्ति।

प्रकृति एवं पुरुष के संयोग का प्रयोजन

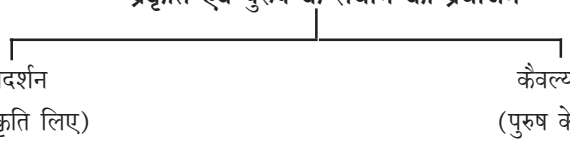

- महत् की उत्पत्ति मूलप्रकृति से होती है।
- अहंकार की उत्पत्ति महत् से होती है।
- सोलह पदार्थों का समूह अर्थात् पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ, पञ्च तन्मात्रा तथा मन की उत्पत्ति अहंकार से होती है।
- पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति पाँच तन्मात्राओं से होती है।
- महत् को बुद्धि, प्रत्यय, महान् एवं उपलब्धि आदि नामों से भी जाना जाता है।
- सत्त्वगुण प्रधान अहंकार से पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ, तथा मन की उत्पत्ति होती है।
- तमोगुण प्रधान अहंकार से पञ्च तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है।

सांख्य की सृष्टि प्रक्रिया (का0-22)

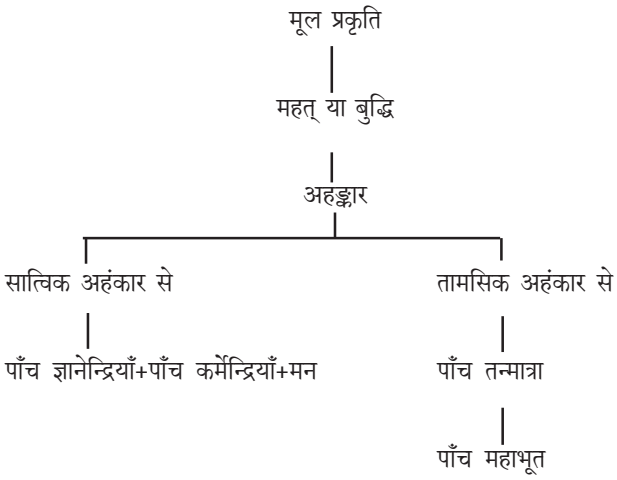

- पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं- श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण।
- पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं- वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ।
- पाँच तन्मात्रा हैं- शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध।
- पाँच महाभूत हैं- आकाश, वायु,तेज, जल, पृथिवी।

पाँच महाभूतों की उत्पत्ति क्रम

1. पाँच तन्मात्रा	2. महाभूत
शब्द	आकाश
शब्द+स्पर्श	वायु
शब्द+स्पर्श+रूप	अग्नि
शब्द +स्पर्श+रूप+रस	जल
शब्द+स्पर्श+रूप+रस+गन्ध	पृथिवी

- बुद्धि का लक्षण है- 'अध्यवसायो बुद्धिः धर्मः' अर्थात् निश्चयात्मक अथवा निश्चय करने वाला तत्त्व बुद्धि है। (का0-23)
- बुद्धि के आठ गुण- धर्म,अधर्म,ज्ञान,अज्ञान,वैराग्य,राग,ऐश्वर्य,अनैश्वर्य।
- बुद्धि के चार सात्त्विक गुण- धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य।
- बुद्धि के चार तामसिक गुण- अधर्म,अज्ञान, राग, अनैश्वर्य।
- व्यक्ति को 'अभ्युदय' एवं निःश्रेयस् की प्राप्ति कराने वाला कारण धर्म है।
- त्रिगुणात्मिका 'प्रकृति' एवं निर्गुण, तेजोरूप 'पुरुष' का विवेक भेदपूर्वक साक्षात्कार ही सांख्यदर्शन की भाषा में ज्ञान कहलाता है।
- आसक्ति का अभाव वैराग्य है।
- अणिमा, लघिमा, गरिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व एवं ईशित्व इन आठ सिद्धियों की प्राप्ति ही ऐश्वर्य है।

बुद्धि के धर्म (गुण)

सत्त्व अंश	तामसिक अंश
(धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य)	(अधर्म, अज्ञान, राग, अनैश्वर्य)

- अहङ्कार- ''अभिमानोऽहंकारः''अर्थात् 'मैं' इस प्रकार के अभिमान को अहंकार कहते हैं।
- अहंकार से दो प्रकार के कार्य होते हैं-
  1. ग्यारह इन्द्रियों का समूह
  2. पञ्चतन्मात्राओं का समूह।
- ग्यारह इन्द्रियों का समूह वैकृत नामक सात्त्विक अहंकार से तथा पञ्चतन्मात्राओं का समूह भूतादि नामक तामस अहङ्कार से उत्पन्न होते हैं। (का0-24)

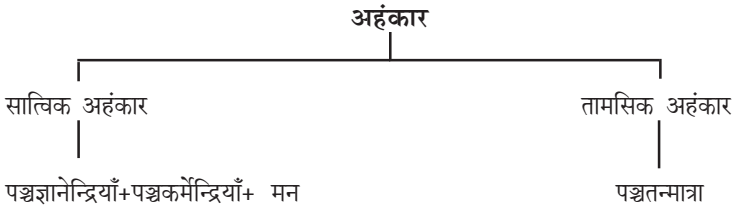

- इन्द्रियाँ दो प्रकार की होती हैं- अन्तः इन्द्रिय, बाह्य इन्द्रिय
- ज्ञान कराने वाली इन्द्रिय को ज्ञानेन्द्रिय कहा जाता है इसे 'बुद्धीन्द्रिय'भी कहते हैं।
- रूप, रस और गन्धादि विषयों को बुद्धिपूर्वक आलोचन, पर्यालोचन आदि करके जो ज्ञान में साधक अथवा करण होती हैं वे बुद्धीन्द्रिय अथवा ज्ञानेन्द्रिय कहलाती हैं।
- ज्ञान के साधक इन्द्रिय को ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्म के साधक इन्द्रिय को कर्मेन्द्रिय कहा जाता है।
- मन को उभयेन्द्रिय कहा गया है क्योंकि यह ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों के साथ समान रूप से कार्य करता है।
- एकादश इन्द्रियों के बीज मन, संकल्प करने वाला तथा समान धर्मभाव के कारण दोनों प्रकार का होता है। **'उभयात्मकमत्र मनः संकल्पकमिन्द्रियं च'** (का0-27)
- पाँच ज्ञानेन्द्रियों का व्यापार शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का प्रकाशन मात्र माना जाता है **'रूपादिषु पञ्चानामालोचनमात्रमिष्यते वृत्तिः'** (का0-28)
- पाँच कर्मेन्द्रियों का व्यापार बोलना, ग्रहण करना, चलना, त्यागकरना, और आनन्द का अनुभव कराना माना जाता है **'वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्च'** (का0-28)
- नाम, जाति, गुण, क्रिया आदि विशेषताओं का संकल्प-विकल्प करना मन का कार्य है।
- यह वस्तु त्यागने योग्य है अथवा ग्रहण करने योग्य इसका निश्चय बुद्धि करती है।

पाँच ज्ञानेन्द्रियों के कार्य	
ज्ञानेन्द्रिय	**कार्य**
श्रोत्र (कान)	शब्द
त्वक् (त्वचा)	स्पर्श
चक्षु (आँख)	रूप
रसना (जीभ)	रस
घ्राण (नाक)	गन्ध

पाँच कर्मेन्द्रियों के कार्य

कर्मेन्द्रिय	कार्य
वाक् (वाणी)	बोलना (भाषण)
पाणि (हाथ)	लेना (ग्रहण)
पाद (पैर)	चलना (गमनागमन)
पायु (गुदा)	त्याग करना (मलत्याग)
उपस्थ (जननेन्द्रिय)	आनन्द प्रदान करना

पाँच वायु की स्थिति

वायु	**स्थिति** (का0-29)
प्राण	नासिका, हृदय, नाभि, पैर का अँगूठा
अपान	गले की घुंडी, पीठ, पैर, गुदा, जननेन्द्रिय
समान	हृदय, नाभि, शरीर के जोड़
उदान	हृदय, कण्ठ, तालु, सिर- भौहों के बीच
व्यान	सम्पूर्ण शरीर में त्वचा

- करण तेरह प्रकार के हैं 'करणं त्रयोदशविधम्'।
- तेरह प्रकार के करण हैं- एकादश इन्द्रिय, बुद्धि, अहंकार (का0-32)
- करण के कार्य हैं- आहरण, धारण तथा प्रकाश
- वाक् इत्यादि कर्मेन्द्रियाँ अपने-अपने विषय का आहरण या ग्रहण करती हैं।
- बुद्धि, अहंकार और मन अपने प्राण इत्यादि व्यापार के द्वारा देह को धारण करती है।
- ज्ञानेन्द्रियाँ शब्द, स्पर्श इत्यादि को प्रकाशित करती हैं।

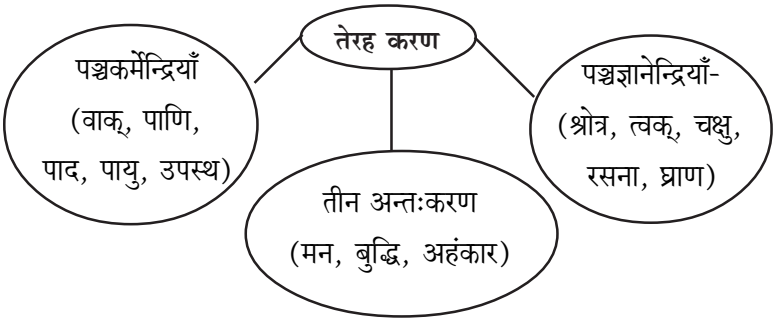

- त्रयोदशकरण को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-
  1. आभ्यन्तरकरण- बुद्धि, अहंकार,मन
  2. बाह्यकरण- पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ।

करण के दो भेद

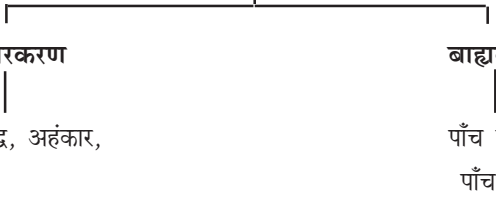

- अन्तःकरण तीन प्रकार के है- **'अन्तःकरणं त्रिविधम्'** (का0-33) बुद्धि, अहंकार, मन।
- अन्तःकरण को प्रस्तुत करने वाले बाह्यकरण दस हैं। पञ्चज्ञानेन्द्रिय+पञ्चकर्मेन्द्रियाँ
- वर्तमान विषयक होते हैं- बाह्य करण
- अन्तःकरण को **आभ्यन्तर करण** भी कहते हैं।
- ज्ञानेन्द्रियाँ बाहर स्थित अपने-अपने विषयों के सम्पर्क में आकर उन्हें प्रकाशित करके उनकी सूचना अन्तः करण को प्रदान करती हैं।
- बाह्यकरण केवल वर्तमानकाल के विषयों में प्रभावी होते हैं इसलिए इसे 'साम्प्रत्कालम्' कहा गया है।
- आभ्यन्तर अर्थात् अन्तःकरण भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में प्रभावी होते हैं।
- 'स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य' में त्रयस्य पद से अभिप्राय मन बुद्धि अहंकार से है।
- अन्तः करण में दो प्रकार की शक्तियों को माना जाता है- ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्ति।
- बुद्धि, मन, अहंकार ज्ञानशक्ति का तथा प्राणादि क्रियाशक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं।
- तीन प्रकार के अन्तः करण तथा एक प्रकार का बाह्य करण होने से करण के चार भेद भी माने गये हैं।
- प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले पदार्थ के सम्बन्ध में चार प्रकार के करणों की प्रवृत्ति कभी एक साथ और कभी क्रमशः कही गयी हैं।
- परोक्ष पदार्थों के ज्ञान के सम्बन्ध में केवल मन, बुद्धि, अहंकार ये तीन अन्तः करण का व्यापार प्रत्यक्षपूर्वक एक साथ और क्रमपूर्वक होता है।

तीन अन्तः करण के कार्य

अन्तः करण	कार्य
बुद्धि	निश्चय
अहंकार	अभिमान
मन	संकल्प

- दस बाह्यकरणों में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ स्थूल और सूक्ष्म दो विषयों में प्रवृत्त होती हैं।
- कर्मेन्द्रियों में वाक् इन्द्रिय शब्द के विषय में प्रवृत्त होती हैं शेष चारों ही शब्द स्पर्श इत्यादि पाँचों विषयों में प्रवृत्त होती हैं।

- तीनों अन्तः करण प्रधान हैं क्योंकि मन एवं अहंकार के साथ बुद्धि सभी विषयों में व्याप्त होती है।
- बाह्य इन्द्रियाँ द्वार या साधनमात्र हैं, मन तथा अहंकार से युक्त बुद्धि साधनवती या प्रधान है।
- करण पुरुष के सम्पूर्ण प्रयोजन को प्रकाशित करके बुद्धि को समर्पित कर देते हैं।
- सभी ज्ञानेन्द्रियों, मन और अहंकार का लक्ष्य बुद्धि होता है।
- समस्त विषयों के सम्बन्ध में होने वाले पुरुष के भोग को बुद्धि ही सम्पादित करती है।
- प्रकृति एवं पुरुष के सूक्ष्म भेद को प्रकट करती है- बुद्धि। **'प्रधानपुरुषान्तरं सूक्ष्मम्'- बुद्धिः।** (का0-37)
- सांख्य के अनुसार दुःख की हमेशा के लिए निवृत्ति ही मोक्ष अथवा कैवल्य है।
- पञ्चतन्मात्रा अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये सूक्ष्म विषय हैं।
- पञ्चतन्मात्राओं से पञ्चमहाभूत की उत्पत्ति होती है।
- आकाश आदि पञ्चमहाभूत विशेष अर्थात् स्थूल कहे जाते हैं, ये सुखात्मक, दुःखात्मक और मोहात्मक होते हैं।
- शान्त घोर और मूढ होते हैं-पञ्चमहाभूत
- सूक्ष्म अर्थात् इन्द्रियों द्वारा जिनका प्रत्यक्ष नहीं किया जाता वे अविशेष हैं।
- सूक्ष्मशरीर, माता-पिता से उत्पन्न स्थूलशरीर, पञ्चमहाभूत ये तीन स्थूल विषय होते हैं।
- नित्य होता है- सूक्ष्मशरीर।
- अनित्य होता है- माता-पिता से उत्पन्न स्थूलशरीर।
- सूक्ष्मशरीर की गति सर्वत्र होती है।
- प्रलयकाल में सूक्ष्मशरीर भी अपने कारण में समाहित हो जाता है।
- सूक्ष्मशरीर को लिङ्गशरीर भी कहते हैं।
- सांख्य का **सूक्ष्मशरीर 18 तत्त्वों** से निर्मित होता है। (का0-40) पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्राएँ, महत्, अहंकार, मन ये सूक्ष्मशरीर के 18 अवयव हैं।
- सूक्ष्मशरीर होता है- सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न, सभी जगह गति करने में सक्षम, प्रलयकाल तक स्थायीरूप से रहने वाला, भोगरहित, भावों से युक्त, महत् से लेकर सूक्ष्मतन्मात्रापर्यन्त, 18 तत्त्वों से निर्मित।
- सूक्ष्मशरीर ही संसरण या गमनागमन करता है।
- सूक्ष्मशरीर का आधार **छः कोषों** से निर्मित स्थूलशरीर होता है।
- 18 तत्त्वों से निर्मित सूक्ष्मशरीर केवल तन्मात्ररूप में स्थित रहता है।
- सूक्ष्मशरीर निरूपभोग अर्थात् भोगरहित होता है।
- सूक्ष्मशरीर को लिङ्गशरीर भी कहते हैं- पुरुष की सत्ता का द्योतक होने के कारण।
- लिङ्ग का लक्षण है- 'लिंग्यते अनेन इति लिङ्गम्' अथवा 'लीनं गमयति इति लिङ्गम्'

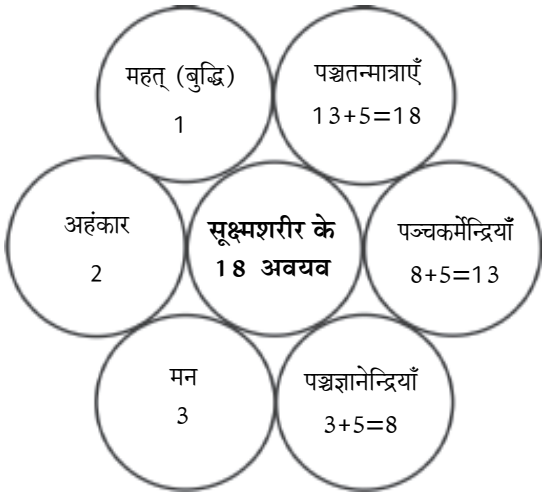

- अविशेष अर्थात् पञ्चतन्मात्राओं के बिना लिङ्गशरीर निराश्रय नहीं रह सकता।
- सूक्ष्मशरीर के द्वारा स्थूलशरीर के माध्यम से जो भी कार्य सम्पन्न किए जाते हैं उन सबका मुख्य प्रयोजन पुरुष के भोग एवं अपवर्ग को सम्पादित करना है।
- प्रकृति अर्थात् स्वभाव से ही सिद्ध सांसिद्धिक तथा 'वैकृतिक' धर्म, अधर्म इत्यादि भाव 'करण' अर्थात् निमित्तरूप बुद्धि के आश्रित रहते हैं। (का0-43)
- कलल अर्थात् जरायु से परिवेष्टित रजोमिश्रितवीर्य इत्यादि भाव कार्य अर्थात् नैमित्तिक शरीर के आश्रित रहते हैं।
- रजस् और वीर्य के मिश्रण को **'कलल'** कहा जाता है।
- धर्म से ऊर्ध्व लोक में गति होती है **'धर्मेण गमनमूर्ध्वम्'** (का0-44)
- अधर्म से अधोलोक में गति होती हैं- **'गमनमधस्ताद् भवत्यधर्मेण'** (का0-44)
- सांख्य में ज्ञान से मोक्ष होता है **'ज्ञानेन चापवर्गः'** (का0-44)
- अज्ञान से बन्धन की प्राप्ति होती है **'विपर्ययादिष्यते बन्धः'** (का0-44)
- धर्म से अभिप्राय यम, नियम आदि अष्टाङ्गयोग, अभ्युदय एवं निःश्रेयस् के साधक यज्ञ, दान, आदि अनुष्ठान सभी श्रेष्ठकर्मों से है।
- लोक हैं- ऊर्ध्वलोक, अधोलोक
- ऊर्ध्वलोकों की संख्या सात है- भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यलोक
- अधोलोक की संख्या भी सात है- अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताल।
- विवेकख्याति सम्भव है- सांख्यशास्त्र द्वारा।

भावों के फल

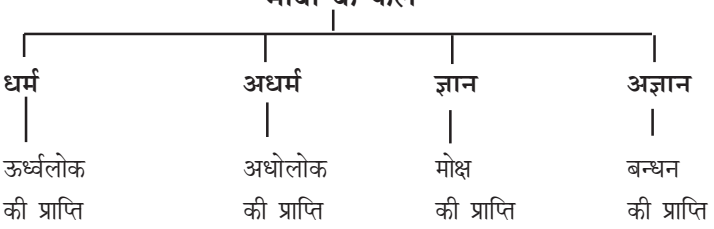

- वैराग्य से प्रकृतिलय होता है **'वैराग्यात् प्रकृतिलयः'** (का0-45)
- रजोमय राग से संसरण होता है **'संसारो भवति राजसाद्रागात्'** (का0-45)
- ऐश्वर्य से इच्छा की सफलता होती है **'ऐश्वर्यादविघातः'** (का0-45)
- ऐश्वर्य के अभाव से इच्छा की सफलता का हनन होता है **'विपर्ययात् तद्विपर्यासः'** (का0-45)

बुद्धि में स्थित भावों के कार्य

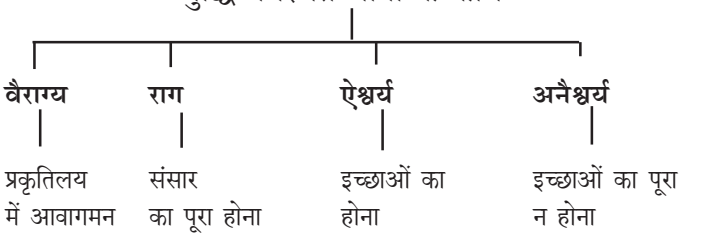

सृष्टि के भेद

- सांख्य के अनुसार सृष्टि दो प्रकार की होती है- भौतिक एवं बौद्धिक।
- बुद्धि के चार प्रमुख परिणाम हैं- विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि, सिद्धि। इन्हें प्रत्ययसर्ग या **बुद्धिसर्ग** कहते हैं।
- प्रत्ययसर्ग के कुल **पचास भेद** हैं। (का0-46-47)
- विपर्यय के **पाँच भेद**- तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र।
- अशक्ति की संख्या **अट्ठाइस** है; जिसमें सत्रह प्रकार के बुद्धि के दोष तथा एकादश इन्द्रियों के वध। (का0-28)
- वाधिर्य, कुष्ठता, अन्धत्वी, जडता, अजिघ्रता,मूकता, कैवल्य, पंगुत्व, कौण्ड्य, उदावर्त, मन्दता, असुवर्णा, अनिला, मनोज्ञा, अदृष्टि, अपरा, सुपरा, असुनेत्रा, वसुनाडिका, अनुत्तमाम्भसिका, अप्रतार, असुतार, अतारतार, असदामुदित, अरम्यक्, अप्रमोद, अमुदित, आमोदमान- ये 28 अशक्तियाँ हैं।
- तुष्टि के नौ भेद- 1. प्रकृति, 2. उपादान, 3. काल, 4. भाग, 5. पार, 6. सुपार, 7. पारापार, 8. अनुत्तमाम्भस्, 9. उत्तमाम्भस्। (का0-47)

- आठ प्रकार की सिद्धियाँ-1-3त्रिदुःख विनाश, 4.अध्ययन,5.ऊह, 6.शब्द, 7.सुहृत्प्राप्ति, 8.दान।
- बुद्धि के उपघातों के साथ ग्यारह इन्द्रियों की विकलता अशक्ति कहलाती है।
- नौ तुष्टि और सिद्धियों के विपर्ययभाव से बुद्धि के सत्रह उपघात होते हैं।
- विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि अंकुशरूप में सिद्धि की बाधक होती हैं।
- पुरुष का भोग-अपवर्ग रूप प्रयोजन ही पुरुषार्थ है।
- बौद्धिक परिणाम के बिना तन्मात्र परिणाम सम्भव नहीं है।
- तन्मात्रपरिणाम के बिना बौद्धिक परिणाम भी सम्भव नहीं है।
- देवसृष्टि के आठ प्रकार होते हैं - 1. ब्राह्म, 2. प्राजापत्य, 3. ऐन्द्र, 4. पैत्र, 5. गान्धर्व, 6. यक्ष, 7. राक्षस, 8. पैशाच
- तिर्यक् सृष्टि के पाँच भेद होते हैं-
  1. पशु, 2. पक्षी,3. मृग 4. सरीसृप, 5. स्थावर।
- मनुष्यसृष्टि एक प्रकार की होती है।

भौतिक सृष्टि

देवसृष्टि	तिर्यक् सृष्टि	मनुष्यसृष्टि
(8प्रकार)	(5 प्रकार)	(1 प्रकार)

इसप्रकार **भौतिक सृष्टि चौदह प्रकार** की होती है।

- ब्रह्म से लेकर तृणपर्यन्त भौतिक सृष्टि में ऊपर के लोक में सत्त्वगुण की प्रधानता, अधोलोक अर्थात् नीचे के लोक में तमोगुण की प्रधानता मध्यलोक में रजोगुण की प्रधानता है।

लोक	गुण	सृष्टि
ऊर्ध्व	सत्त्वगुण	देवसृष्टि
अधः	तमोगुण	तिर्यक् सृष्टि
मध्य	रजोगुण	मानुषी सृष्टि

- चेतन पुरुष शरीर के निवृत्त होने तक जरा मरण से उत्पन्न दुःख भोगता है।
  'जरामरणकृतं दुःखं प्राप्नोति चेतनः पुरुषः' (का0-55)
- प्रकृति द्वारा प्रत्येक पुरुष के मोक्ष के लिये किया गया कार्य, महत् आदि से लेकर आकाश आदि महाभूतों की यह सृष्टि अपने लिए की गई सी प्रतीत होते हुए भी पुरुष के लिए ही है।
  'प्रतिपुरुषविमोक्षार्थं स्वार्थं इव परार्थ आरम्भः' (का0-56)

- पुरुष के मोक्ष के लिए अचेतन प्रकृति स्वतः प्रवृत्त होती है इसके लिए सांख्य गाय एवं बछड़े का उदाहरण देता है।
- जैसे बछड़े के पोषण के लिए अचेतन दूध माता के स्तनों में प्रवृत होता है उसीप्रकार पुरुष को मोक्ष दिलाने के लिए अचेतन मूलप्रकृति की प्रवृत्ति होती है **'पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य'** (का0-57)
- जिसप्रकार संसार में स्वेच्छा की पूर्ति के लिए लोग कार्यों में प्रवृत्त होते हैं ठीक उसीप्रकार प्रकृति भी पुरुष के लिए प्रवृत्त होती है- **'पुरुषस्य विमोक्षार्थं प्रवर्तते तद्वदव्यक्तम्'** (का0-58)
- जैसे नृत्यांगना नाट्यशाला में स्थित दर्शकों को नृत्य दिखाकर नृत्य से निवृत्त हो जाती है- **रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा पुरुषस्य नृत्यात् तथाऽऽत्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः।।** (का0-59)
- गुणवती एवं उपकारिणी प्रकृति निर्गुण होते हुए पुरुष के भोग एवं अपवर्ग रूप प्रयोजन को अनेक प्रकार के उपायों द्वारा बिना किसी स्वार्थभाव से सम्पादित करती है।
- प्रकृति से अधिक लज्जालु और कोई नहीं है, 'जो पुरुष ने मुझे देख लिया', ऐसा ज्ञान हो जाने पर पुनः पुरुष की दृष्टि में नहीं आती-

  प्रकृतेः सुकुमारतरं न किञ्चिदस्तीति मे मतिर्भवति।
  या दृष्टाऽस्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य।। (का0-61)
- वस्तुतः न तो किसी पुरुष का बन्धन होता है और न ही मोक्ष और न संसरण 'तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्' (का0-62)
- अनेक आश्रयों वाली प्रकृति ही संसरण करती है उसी का बन्धन एवं मोक्ष होता है- 'संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः' (का0-62)
- प्रकृति स्वयं को अपने सात रूपों धर्म, अधर्म, अज्ञान, वैराग्य, राग, ऐश्वर्य, अनैश्वर्य के द्वारा अपने को बाँधती है- **'रूपैः सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः'**(का0-63)
- पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए प्रकृति एक रूप ज्ञान द्वारा स्वयं को मुक्त करती है- **'पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येकरूपेण'** (का0-63)
- बन्धन एवं मोक्ष पुरुष का नहीं अपितु सूक्ष्मशरीर के रूप में प्रकृति का होता है।
- प्रकृति अपने ज्ञान नामक भाव से पुरुष के लिए स्वयं को निवृत्त करती है।

  प्रकृति
  - **बन्धन** (सात रूपों द्वारा यथा- धर्म,अधर्म,अज्ञान, वैराग्य, राग, ऐश्वर्य, अनैश्वर्य)
  - **मोक्ष** (एक रूप द्वारा यथा ज्ञान)
- पच्चीस तत्त्वों के लगातार चिन्तनपूर्वक अभ्यास से तीन प्रकार की अनुभूति होती है न अस्मि, न मे, न अहम् 'तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम्' (का0-64) अर्थात् न मैं क्रियावान् हूँ, न भोक्तृत्व हूँ, न कर्त्ता हूँ।

- निष्क्रिय पुरुष विवेकज्ञान रूप सामर्थ्य से धर्म अधर्म आदि सात रूपों से रहित, तथा अपने सम्बन्ध से भोग और विवेकज्ञान इत्यादि परिणाम न उत्पन्न करने वाली प्रकृति को द्रष्टा के समान देखता है।
- भोग एवं विवेक ज्ञान सम्पन्न होते हैं- प्रकृति के द्वारा।
- तत्त्वों के निरन्तर अभ्यास से उत्पन्न विवेकज्ञान होने पर प्रकृति उस ज्ञान के प्रति अपने भोग एवं अपवर्ग दोनों प्रकार के प्रसव बन्द कर देती है।
- चेतन पुरुष के द्वारा प्रकृति को मैने देख लिया ऐसा विचार कर उदासीन हो जाता है।
- प्रकृति के द्वारा उसने (पुरुष) मुझे देख लिया यह सोचकर व्यापार शून्य हो जाता है।
- इसप्रकार का संयोग होने पर भी सृष्टि प्रकृति व्यापार का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता।
- सृष्टि का प्रयोजन है पुरुष के भोगापवर्ग की सिद्धि जो प्रकृति द्वारा सम्पन्न की जाती है।
- मुख्य प्रयोजन अपवर्ग तथा गौण प्रयोजन भोग है।
- पुरुष को विवेकज्ञान होना ही अपवर्ग है।
- आत्मज्ञान की प्राप्ति से, धर्म अधर्म आदि सृष्टि के कारण में न रहने पर पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण कुम्हार के चाक के घूमने के समान शरीर धारण किये रहता है- **'तिष्ठति संस्कारवशाच्चक्रभ्रमिवद् धृतशरीरः'** (का0-67)
- शरीर पात होने पर, भोग एवं अपवर्ग दोनों पुरुषार्थों के पूर्व से सिद्ध रहने के कारण प्रकृति के निवृत्त हो जाने पर पुरुष ऐकान्तिक और आत्यन्तिक मुक्ति प्राप्त कर लेता है।
- ऐकान्तिक और आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति ही कैवल्य है।

❑❑

3. योगदर्शन

- योगदर्शन के प्रणेता **महर्षि पतञ्जलि** हैं।
- योग शब्द युज् + घञ् से बना है जिसका अर्थ है- समाधि।
- 'योगसूत्र' के लेखक **महर्षि पतञ्जलि** हैं।
- योगदर्शन का आधार योगसूत्र है।
- योग को **'सेश्वरसांख्य'** कहा जाता है क्योंकि यह ईश्वरतत्त्व को मानता है।
- योगसूत्र पर व्यास ने एक भाष्य लिखा है जिसे **योगभाष्य** कहा जाता है।
- **योगसूत्र में चार पाद हैं-**

  समाधिपाद साधनपाद विभूतिपाद कैवल्यपाद

  51 + 55 + 55 + 34= 195 सूत्र

1. समाधिपाद में- योग तथा समाधि के स्वरूप तथा भेदों का वर्णन।
2. साधनपाद में - योगप्राप्ति के साधन तथा अष्टाङ्गयोगाङ्गों का वर्णन।
3. विभूतिपाद में- योग से प्राप्त सिद्धियों का वर्णन।
4. कैवल्यपाद में- मोक्ष का वर्णन है।

- योगदर्शन में पदार्थों (तत्त्वों) की संख्या 26 है।
- योगदर्शन पर लिखा गया प्राचीन एवं सर्वप्रथम भाष्य व्यास कृत **व्यासभाष्य** है।
- वाचस्पतिमिश्र ने योगसूत्र पर **'तत्त्ववैशारदी'** नाम की टीका लिखी है।
- योगसूत्र तीन प्रमाण मानता है।

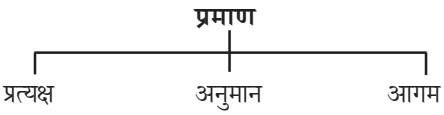

- विज्ञानभिक्षु ने योगसूत्र पर **योगवार्तिक** नामक टीका लिखी है।
- व्यासभाष्य में योग के भेद हैं-

  1. वितर्कानुगत 2. विचारानुगत 3. आनन्दानुगत 4. अस्मितानुगत

  * **वितर्कानुगत-** जिसमें ध्येय विषय के स्थूल रूप का सम्प्रज्ञान होता है।
  * **विचारानुगत -** जिसमें ध्येय विषय के सूक्ष्म रूप का सम्प्रज्ञान होता है।
  * **आनन्दानुगत -** जिसमें ध्यानकारिणी बुद्धि से स्वतः स्फूर्त आनन्द का सम्प्रज्ञान होता है।

* **अस्मितानुगत** - जिसमें बुद्धि और पुरुष की प्रतीयमान एकाकारता से प्रकट होने वाले उभय-स्वरूप विवेक का सम्प्रज्ञान होता है।

- योगदर्शन का पहला सूत्र **'अथ योगानुशासनम्'** है।
- 'अथ योगानुशासनम्' सूत्र में 'अथ' पद का अर्थ है- अधिकार-वाचक।
  'अथ इति अयम् शब्दः = अधिकारार्थः'
- योग का लक्षण है-योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः (1/2)
  चित्त की वृत्तियों के निरोध को ही योग कहते हैं।
- 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' सूत्र से चित्त पद से अभिप्राय अन्तःकरण (मन, बुद्धि और अहङ्कार) से है।
- चित्त की पाँच भूमियों या अवस्थाओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

चित्तभूमियाँ (पाँच)

क्षिप्त	मूढ	विक्षिप्त	एकाग्र	निरुद्ध
रजोगुण	तमोगुण	सत्वगुण का आधिक्य	सात्विक	राजस्+तामस्+ सत्व का निरोध

- चित्तवृत्तियाँ भी पाँच प्रकार की होती हैं- प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः (1/6)

चित्तवृत्तियाँ - (5)

प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृति

- प्रमाण नामक वृत्ति के भेद हैं- तीन
  1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान 3. आगम (शब्द)
  'प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि' (1/7)
- **विपर्यय-विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्** (1/8)
  ज्ञेय वस्तु से भिन्न अर्थ में प्रतिष्ठित मिथ्याज्ञान विपर्यय कहा जाता है।
- विपर्यय का अर्थ है- मिथ्याज्ञान अथवा अविद्या
  विपर्यय या अविद्या के पाँच पर्व/क्लेश/अङ्ग भी बताये गये हैं।
- **पञ्चक्लेश-अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः।**
  1. अविद्या 2. अस्मिता 3. राग 4. द्वेष 5. अभिनिवेश
- **विकल्प - शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः** (1/9)
  शब्द से उत्पन्न जो ज्ञान, उसके पीछे, चलने का जिसका स्वभाव हो और जो वस्तु की सत्ता की अपेक्षा रखता हो, इसप्रकार का ज्ञान 'विकल्प' कहलाता है।

- **निद्रा-अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा (1/10)**
  जाग्रत तथा स्वप्नावस्था की वृत्तियों के अभाव के कारणभूत तमोगुण को विषय बनाने वाली वृत्ति निद्रा कही जाती है।
- **स्मृति- अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः**। (1/11)
  अनुभव किये हुऐ विषय का फिर चित्त में तन्मात्र विषयक- ज्ञान होना 'स्मृति' कहलाता है।
- पाँचो वृत्तियों के निरोध का उपाय है-अभ्यास और वैराग्य
  अभ्यास- अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।। (1/12)
  स्थिति के निमित्त प्रयत्न करना ही अभ्यास है।
- **'दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्'** (1/15)
  ऐहिक और पारलौकिक विषयों से निःस्पृह चित्त का 'वशीकार संज्ञा' नामक अपर वैराग्य होता है।

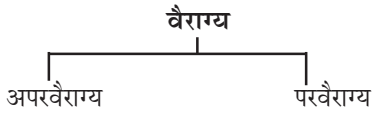

- **तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्** (1/16)
- पुरुष की ख्याति के कारण गुणों के प्रति जो उपेक्षाबुद्धि होती है, वही परवैराग्य है।
- समाधि दो प्रकार की है- सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात
- **वितर्कविचारानन्दा स्मितानुगमात्सम्प्रज्ञातः** (1/17)
  वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता का अनुगम होने से सम्प्रज्ञातसमाधि होती है।
- **असम्प्रज्ञात का लक्षण**- विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः (1/18)
  सभी वृत्तियों के अस्त हो जाने पर चित्त का निरोध संस्कारमात्र शेष निरोध-असम्प्रज्ञात समाधि है।
- असम्प्रज्ञात समाधि के दो प्रकार हैं -
  (1) उपायप्रत्यय (2) भवप्रत्यय
- असम्प्रज्ञात समाधि को 'निर्बीज समाधि' भी कहते हैं।
- 'भवप्रत्यय' असम्प्रज्ञातसमाधि विदेहों तथा प्रकृतिलीनों की होती है।
  'भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्'(1/19)
- ईश्वरप्रणिधान से भी असम्प्रज्ञात समाधि सम्पाद्य होती है। **'ईश्वरप्रणिधानाद्वा'** (1/23)
- ईश्वर की भक्ति विशेष से असम्प्रज्ञातसमाधि और कैवल्य की सिद्धि निकटतम हो जाती है।
- **ईश्वर का लक्षण - क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।** (1/24)
  'ईश्वर' - क्लेश, कर्म, विपाक और आशय वासनाओं के परामर्श से रहित एक

विशेष प्रकार का पुरुष है।

- 'सर्वज्ञता का बीज अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त होता है' - **तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्** (1/25)
- 'प्रणवः' किसका वाचक है ?- ईश्वर का
- क्लेशः - अविद्यादि पाँचों क्लेश

  कर्म- कर्मसंस्कार धर्माधर्मरूप

  विपाकः- कर्मफलानि, कर्म से मिलने वाले फल जाति, आयु और भोगरूप फल।

  आशय- चित्ते आ समन्तात् शेते इति वासना संस्कारः आशयः। चित्त में सब ओर से ग्रथित रहने के कारण इन वासना संस्कारों को 'आशय' कहते हैं।

  अपरामृष्टः - असंस्पृष्ट नाममात्र के भी सम्बन्ध अर्थात् सम्पर्क से रहित।
- ईश्वर का अभिधायक शब्द है- ओंकार
- ओंकार जप के पश्चात् करना चाहिए- योगसाधना
- योगसाधना के पश्चात् करना चाहिए- जप
- जप और योग की सिद्धि से साक्षात्कार होता है- परमात्मा का
- **चित्त के विक्षेप-**व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व। ये ही विघ्न भी है।

  व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादाऽऽलस्याऽविरतिभ्रान्तिदर्शनाऽलब्ध-भूमिकत्वाऽनवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः(1/30)
- ये नव विघ्न ही चित्त के विक्षेप हैं।
- दुःख, दौर्मनस्य, अङ्गकम्पन, श्वास और प्रश्वास ये साथी हैं- विक्षेपों के

  दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः। (1/31)

  उन (विघ्नों) को दूर करने के लिये किसी एक तत्व का अभ्यास करना चाहिए।

  तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः (1/32)
- प्राणों का रेचक पूरक तथा कुम्भक करने से भी चित्त प्रसन्न होता है।

  'प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य' (1/34)

  उरस्थ वायु को नाक के नथुनों से विशिष्ट प्रयत्न के द्वारा निकालना प्रच्छर्दन है। 'विधारण' प्राणायाम पूरक और कुम्भक है।
- श्रेष्ठमणि के समान क्षीणवृत्तियों वाले तथा ग्रहीता, ग्रहण और ग्राह्य विषयों में स्थित होने वाले चित्त का उनके आकार को ग्रहण कर लेना समापत्ति है।

  'क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः' (1/41)
- समापत्ति + (सम् + आङ् + पद् + क्तिन्) से बना है।

  समापत्ति - सम्यक् प्रकार से सब ओर से हो जाना।
- समापत्तियाँ चार हैं-

  1. सवितर्का 2. निर्वितर्का 3. सविचारा 4. निर्विचारा

- सवितर्का, निर्वितर्का, सविचारा, निर्विचारा ये चारों समापत्तियाँ ही सबीज समाधियाँ हैं। **'ता एव सबीजः समाधिः' (1/46)**
- ऋतम्भरा प्रज्ञा तथा तज्जन्य संस्कार सबका निरोध हो जाने से निर्बीज समाधि सिद्ध होती है। **'तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः' (1/51)**
- तपस्या स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान क्रियायोग हैं।
  'तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः (2/1)

क्रियायोग

1. तप 2. स्वाध्याय 3.ईश्वरप्रणिधान

- 1. चित्त की प्रसन्नता को बाधित न करने वाली स्थिति **तप** है।
  2. शास्त्रों के द्वारा ओङ्कार इत्यादि पवित्र मन्त्रों का जप करना **स्वाध्याय** है।
  3. सभी क्रियाओं को परम गुरू ईश्वर में अर्पित करना या उन कर्मों के फलों का संन्यास **ईश्वरप्रणिधान** है।
- अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश ये पाँच क्लेश होते हैं।
  अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः। (2/3)
  भाष्यकार के अनुसार पाँच क्लेशों का अर्थ है-पाँच प्रकार के विपर्यय या मिथ्याज्ञान।
- प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार इन चारों अवस्थाओं में रहने वाले 'अस्मिता' इत्यादि चारों परवर्ती क्लेशों की प्रसवभूमि अविद्या है।
  अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्। (2/4)
- अनित्य, अपवित्र, दुःखमय और अनात्मपदार्थों में क्रमशः नित्य, पवित्र, सुखमय और आत्मा का ज्ञान होना अविद्या है।
  'अनित्याऽशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।' (2/5)
  अनित्य पदार्थ में नित्यपदार्थ का ज्ञान अविद्या है जैसे-पृथ्वी नित्य या स्थायी है। चन्द्रमा और तारों सहित द्युलोक नित्य है।
  'अविद्या' शब्द में 'नञ्' तत्पुरुष समास = न विद्येति अविद्या।
- दृकशक्ति पुरुष और दर्शनशक्ति बुद्धि की प्रतीयमान एकात्मता अस्मिता नामक क्लेश है। **'दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता'** (2/6)
  सुख के अनुभविता को सुखानुभव की स्मृतिपूर्वक सुख या सुख के साधनभूत पदार्थ के प्रति जो चाह लालच या लोलुपता होती है वह राग नामक क्लेश है।
- इसका लक्षण - **'सुखानुशयी रागः'** (2/7)
  सुखस्य अनुशयी इति सुखानुशयी

- दुःख के अनुभविता को दुःखानुभव की स्मृतिपूर्वक दुःख या दुःख के साधनभूत पदार्थ के प्रति जो प्रतिहिंसा, मन्यु, मारने की इच्छा या क्रोध होता है, वह द्वेष है।
  'दुःखानुशयी द्वेषः' (2/8)
  अनुशयी - अनु +शीङ् +णिनिः = अनुशयी
- संस्काररूप से स्थिर, विद्वानों में भी उसीप्रकार से वर्तमान क्लेश अभिनिवेश है।
  स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः (2/9)
  अभिनिवेश नामक क्लेश स्वभावतः वर्तमान में रहने वाला उत्पन्न मात्र हुए कीट को भी प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम प्रमाणों के द्वारा अज्ञेय, आत्मनाश की कल्पनारूप मरण का भय है।
- स्वस्य रसः इति स्वरसः तं वोढुं शीलमस्येति स्वरसवाही स्वरस + वह + णिनिः
- अपने मौलिक रूप को सदा अक्षुण्ण रखने वाला या संस्कार से सदैव वर्तमान रहने वाला। **'स्वरसवाही स्वरसेन संस्कारमात्रेण वहतीति स्वरसवाही'**
- अभिनिवेशः मरणभयम् - मरने का डर ही अभिनिवेश है।
- पाँच क्लेशों की वृत्तियाँ क्रियायोग से हल्की तथा विवेकख्याति के द्वारा नष्ट की जाने योग्य होती है। **''ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः''** (2/11)
- क्लेशरूपी मूल के रहने पर जन्म, आयु और भोग रूपी कर्माशय के फल प्राप्त होते हैं। **सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः** (2/13)
- भविष्यकालिक दुःख ही 'हेय' है। **हेयं दुःखमनागतम्** (2/16)
  द्रष्टा और दृश्य का संयोग हेय का हेतु है। **द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः।** (2/17)
- अविद्या के मिट जाने से संयोग का नाश हो जाना 'हान' है वही पुरुष का 'कैवल्य' है।
  तद्भावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम्। (2/25)
- मिथ्याज्ञानशून्य विवेकख्याति ही हान का उपाय है। **विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः (2/26)**
- विवेकख्याति योगी की उत्कृष्ट स्तरवाली प्रज्ञा सात प्रकार की होती है। **तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा** (2/27)
- योग के अङ्गों का अनुष्ठान करने से, अशुद्धि का क्षय हो जाने पर विवेकख्याति के उदय तक ज्ञान का प्रकाश होता जाता है।
  योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः। 2/28
- **अष्टाङ्गयोग-** यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ योग के अङ्ग हैं।
  यमनियमाऽऽसनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि (2/29)

- **यमाः** - अहिंसादयः पञ्च, अहिंसा इत्यादि पाँच यम हैं।
  अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः (2/30)
  अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम कहे जाते हैं।
- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह में से प्रथम अहिंसा को बताते हैं।
- **अहिंसा-** सब प्रकार से सदैव सब प्राणियों को पीड़ा न पहुचाना अहिंसा है।
  'तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः।'
  सत्य- जैसा देखा गया या अनुमित किया गया या सुना गया हो उसके सम्बन्ध में वैसी ही वाणी और वैसा ही मन रखना 'सत्य' है। **'सत्यं यथार्थे वाङ्मनसे'**
- **अस्तेय-** शास्त्राज्ञा के विपरीत दूसरों का द्रव्य ग्रहण करना 'स्तेय' है।
  स्तेयमशास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परतः स्वीकरणम्।
  इसप्रकार की इच्छा का अभाव रूप स्तेयाभाव 'अस्तेय' है।
  तत्प्रतिषेधः पुनरस्पृहारूपमस्तेयमिति।
- **ब्रह्मचर्य-** गुप्तेन्द्रिय अर्थात् जननेन्द्रिय का निग्रह 'ब्रह्मचर्य' है।
  'ब्रह्मचर्य गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः।'
- **अपरिग्रह-** विषयों की प्राप्ति रक्षा और तद्विषयक आसक्ति तथा हिंसादि दोषों के कारण उन विषयों को स्वीकार न करना 'अपरिग्रह' है।
  विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसङ्गहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणमपरिग्रह इत्येते यमाः।
- जाति, देश, काल और आचार परम्परा से सीमित न होते हुए ये यम सार्वभौम **'महाव्रत'** कहे जाते हैं।
  'जातिदेशकालसमयानवच्छिनाः सार्वभौमा महाव्रतम्' (2/31)
- **नियम -** शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान नियम कहे जाते हैं।
  शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः (2/32)
- **ईश्वरप्रणिधन-** गुरू या ईश्वर के प्रति सभी कर्मों का अर्पण करना ईश्वरप्रणिधान है।
  ईश्वरप्रणिधानं तस्मिन् परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम्।
- अहिंसा के प्रतिष्ठित हो जाने पर उस योगी के पास प्राणियों का पारस्परिक वैरभाव छूट जाता है। **अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।** (2/35)
- **सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्** (2/36)
  सत्य के प्रतिष्ठित वितर्कशून्यतया स्थिर हो जाने पर उस साधक में शुभाशुभ क्रियाओं और उनके फलों की आश्रयता आ जाती है।
- अस्तेय के प्रतिष्ठित हो जाने पर सभी रत्नों की उपस्थिति होती है।
  अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ' (2/37)

- ब्रह्मचर्य के प्रतिष्ठित हो जाने पर सामर्थ्य लाभ होता है।
  ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः (2/38)
- अपरिग्रह के स्थित होने पर भूत, वर्तमान और भविष्य के जन्मों तथा अनेक प्रकार का सम्यग्ज्ञान होता है।
  अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः (2/39)
- शौच के स्थिर होने से अपने अङ्गों के प्रति घृणा और अन्य प्राणी के अङ्गों से संसर्गाभाव होता है।
  शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः (2/40)
- बुद्धिशुद्धि से मन की प्रसन्नता एकाग्रता इन्द्रियों पर विजय और आत्मसाक्षात्कार की योग्यता आती है।
  सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च (2/41)
- सन्तोष के स्थित होने से निरतिशय सुख की प्राप्ति होती है।
  सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः (2/42)
- स्वाध्याय के स्थिर होने से इष्ट देवताओं का सम्पर्क होता है।
  स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः (2/44)
- ईश्वरप्रणिधान स्थित होने से समाधि की सिद्धि होती है।
  समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् (2/45)
- जो शारीरिक स्थिति स्थायी और सुखद हो, वह आसन है।
  स्थिरसुखमासनम् (2/46)
  यथा-पद्मासनं, वीरासनं, भद्रासनं, स्वस्तिकासन, दण्डासनं, सोपाश्रयं, पर्यङ्कं, क्रौञ्चनिषदनं, हस्तिनिषदनमुष्ट्रनिषदनं समसंस्थानं स्थिरसुखं, यथासुखं आदि इसीप्रकार के और भी स्थिर सुख आसन होते हैं।
  आस्यते अनेन इति करणे ल्युट् (आस्+ ल्युट्) आसनम् = बैठने का प्रकार
- स्थिरञ्च तत् सुखञ्चेति स्थिरसुखम् = निश्चल तथा सुखकारी।
  आसनसिद्धि होने पर शीतोष्णादि द्वन्द्वों से बाधा नहीं होती। **ततो द्वन्द्वानभिघातः।** (2/48)
- उस आसनजय के होने पर श्वास और प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम है।
  'तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः' (2/49)
- शरीर के बाहर होने वाला रेचक, भीतर होने वाला पूरक तथा बाहर और भीतर रुकने वाला कुम्भक त्रिविध प्राणायाम देश, समय और संख्या के द्वारा परीक्षित होता हुआ दीर्घ और सूक्ष्म होता है।

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः। (2/50)

- उस प्राणायाम की सिद्धि से प्रकाश पर पड़ा हुआ पर्दा क्षीण होता है।
  'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्' (2/52)
- धारणाओं में मन की क्षमता होती है। **धारणासु च योग्यता मनसः** (2/53)
- प्राणायामाभ्यासादेव 'प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य' इति वचनात्।
- अपने अर्थात् इन्द्रियों के विषयों के साथ सन्निकर्ष न होने पर इन्द्रियों का चित्त के स्वरूप का अनुसरण सा कर लेना प्रत्याहार है।
  स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः (2/54)
- उस प्रत्याहार से इन्द्रियों की प्रबल वशवर्तिता होती है।
  ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् (2/55)
- चित्त के सात्विक वृत्ति को किसी बाहरी या भीतरी प्रदेश में लगाना ही धारणा है।
  देशबन्धश्चित्तस्य धारणा (3/1)
- धारणा वाले विषय में, ध्येयरूप आलम्बन वाले ध्येय पर ही केन्द्रित तथा अन्य ज्ञानों से अस्पृष्ट ज्ञान की अविच्छिन्न तथा अभिन्न धारा ही 'ध्यान' है।
  तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् (3/2)
- ध्येय अर्थमात्र को निर्भासित करने वाला अपने (ज्ञानात्मक) रूप से भी रहित-सा ध्यान ही समाधि है। **तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः** (3/3)
  योग के लिये जिन समाधियों की उपयोगिता होती है, वे क्रमशः ये हैं।
  1. योगाङ्गरूपिणी की प्रस्तुतसूत्रोक्तसमाधि
  2. सम्प्रज्ञातसमाधि
  3. असम्प्रज्ञातसमाधि
- **संयम-** ये धारणा, ध्यान और समाधि-तीनों एकत्र अर्थात् एक ही आलम्बनगत होने पर संयम कहे जाते हैं। **त्रयमेकत्र संयमः (3/4)**
  अन्तरङ्ग साधन - यमादि साधनों की अपेक्षा वे धारणा, ध्यान और समाधि सम्प्रज्ञात समाधि के लिये अन्तरङ्ग माने जाते हैं। **त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः (3/7)**
  संयम भी निर्बीजसमाधि के लिये बहिरङ्ग ही है। **तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य** (3/8)
- धारणा, ध्यान, समाधि इन तीनों को 'संयम' कहा गया है।
- तीनों परिणामों में संयम करने से योगी को अतीत तथा अनागत का साक्षात्कार होता है। **परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् (3/16)**
  संस्कारों में संयम करने के फलस्वरूप प्राप्त साक्षात्कार से पूर्वजन्मों का ज्ञान होता है। **संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्णजातिज्ञानम् (3/18)**
- सूर्य में किये गये संयम में समस्त भुवनों का ज्ञान होता है।
  भुवनज्ञानं सूर्ये संयमाद् (3/26)

- बुद्धि और पुरुष के अन्यत्व की ख्याति में ही प्रतिष्ठित चित्त वाले योगी को सभी पदार्थों का स्वामित्व तथा सर्वज्ञत्व सिद्ध होता है।
  सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वञ्च (3/49)
- विशोका नाम की सिद्धि है जिसको प्राप्त करके योगी सर्वज्ञ,दग्धक्लेशबन्धन और स्वामी होकर विचरण करता है।
- बुद्धिसत्व और पुरुष की शुद्धि के समान हो जाने पर कैवल्य होता है।
  सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति (3/55)
- सिद्धियाँ जन्म, औषधि मन्त्र, तप और समाधि से उत्पन्न होती है।
  जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः। (4/1)
- अन्यदेहधारणरूपा सिद्धि देवादिनिकायों में जन्म से होती हैं।
- आसुर लोको में औषधियों से अर्थात् रसायन इत्यादि से इसप्रकार की सिद्धि होती है।
- मन्त्रों से आकाश में उड़ना और अणिमादि सिद्धियों की प्राप्ति होती है।
- तप से सङ्कल्प की सिद्धि होती है, जिससे यथेच्छारूप वाला होकर जहाँ तहाँ स्वेच्छा से पहुँचने वाला होता है।
- निर्मीयमाण शरीर में निर्मित होने वाले निर्माण चित्त अस्मिता से ही निर्मित होते हैं।
  'निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात्' (4/4)
- चित्त के कारणभूत अस्मितामात्र को लेकर वह योगी निर्माणचित्तों को तैयार कर देता है। निर्माणकाय चित्तयुक्त हो जाते हैं।
- पाँच प्रकार के चित्त -जन्म, ओषधि, मन्त्र, तपस्या और समाधि में से समाधिसम्पन्न चित्त कर्मक्लेश की वासना से रहित होता है। **तत्र ध्यानजमनाशयम् (4/6)**
- पञ्चविधं निर्माणचित्तम् -
  जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धय इति।
  पाँच प्रकार के निर्माणचित्त हुए क्योंकि जन्म, औषधि, मन्त्र, तपस्या और समाधि इन पाँच से ऐसी सिद्धियाँ उत्पन्न होती है।
- कारण (अविद्या) फल (पुरुषार्थ) आश्रय (चित्त) और आलम्बन (विषय) के द्वारा ही उपचित होने के कारण, इन चारों का अभाव होने पर उन वासनाओं का अभाव हो जाता है।
  हेतुफलाश्रयालम्बनैः सङ्गृहीतत्वादेषामभावे तदभावः (4/11)
  हेतु का वर्णन इसप्रकार है - धर्म से सुख और अधर्म से दुःख होता है सुख से राग और दुःख से द्वेष होता है और उस रागद्वेष से प्रयत्न होता है।
- द्रष्टा (पुरुष) और दृश्य (विषयी) से अभिसम्बद्ध सभी विषयों वाला होता है
  द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् (4/23)
- चित्त से विविक्त (पुरुष) का साक्षात्कार कर लेने वाले की, आत्मभाव की भावना निवृत्त हो जाती है। **विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः** (4/25)

- योगी का चित्त विवेकमार्गी एवं कैवल्य फलोन्मुख होता है।
  तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् (4/26)
- विवेकख्याति में भी वीतराग (योगी) को सर्वथा विवेकख्याति होने से धर्ममेध समाधि होती है। **'प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेधः समाधिः।'** (4/29)
- धर्ममेध समाधि से क्लेश और कर्म की निवृत्ति हो जाती है
  ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः (4/30)
  उस समस्त आवरणमलों से रहित ज्ञान के अनन्त हो जाने से श्रेय स्वल्प हो जाता है।
  तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् (4/31)
- धर्ममेध के उदित होने से चित्तरूप सत्वादि तीनों गुणों के परिणाम के क्रम की समाप्ति हो जाती है। **'ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम्' (4/32)**
- 'क्रम' क्षणप्रतियोगिक तथा परिणाम के पर्यवसान से ज्ञायमान होता है।
  क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्गाह्यः क्रमः (4/33)
  गुणों के अधिकार (परिणाम) के क्रम की समाप्ति हो जाने पर कैवल्य प्राप्त होता है। उस कैवल्य का स्वरूप निश्चित किया जा रहा है -
  'गुणाधिकारक्रमसमाप्तौ कैवल्यमुक्तम्। तत्स्वरूपमवधार्यते।'
- भोगापवर्गरूपी पुरुषार्थ से रहित सत्त्वादि तीनों गुणो का अव्यक्त में प्रविलीन हो जाना कैवल्य है या चित्तशक्ति का अपने रूप में प्रतिष्ठित हो जाना ही कैवल्य है।
- **'पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति।' (4/34)**

❑❑

4. तर्कभाषा (न्यायदर्शन)

भूमिका-

- 'न्याय' शब्द की व्युत्पत्ति- '' **नीयते विवक्षितार्थः अनेन इति न्यायः**'' अर्थात् जिस साधन से हम अपने विवक्षित (ज्ञेय) तत्त्व के पास पहुँच जाये या उसे जान पाये,वही साधन न्याय है।
- वात्स्यायन के अनुसार न्याय शब्द का अर्थ है- प्रमाणों से अर्थ की परीक्षा करना - **प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः** (न्यायभाषा)
- न्यायशास्त्र को तर्कशास्त्र,प्रमाणशास्त्र,हेतुविद्या,वाद-विवाद तथा आन्वीक्षिकी अर्थात् समीक्षात्मक परीक्षण भी कहा जाता है।
- न्यायदर्शन के प्रणेता **गौतम मुनि** हैं। इनको **अक्षपाद** नाम से भी जाना जाता है।
- न्यायदर्शन वस्तुवादी दर्शन है। यह अनुभव के आधार पर दर्शनशास्त्र के विवेच्य तत्त्वों की व्याख्या करता है।
- न्यायदर्शन का मुख्य विषय प्रमाणों के स्वरूप का विवेचन है।
- न्यायशास्त्र का लक्ष्य है- दुःखनिवृत्ति करना अर्थात् मोक्षप्राप्ति।
- न्यायशास्त्र के अनुसार यह जगत् 'सत्य' है।
- **न्यायदर्शन के प्रसिद्ध आचार्य-**
  न्यायदर्शन का लगभग दो हजार वर्षों का इतिहास है। चतुर्थ शताब्दी ई॰पू॰ से लेकर आज तक।
- न्यायशास्त्र दो धाराओं में विभक्त है- (i) प्राचीनन्याय (ii) नव्यन्याय

1. आचार्य गौतम- (न्यायसूत्रकार)

- आचार्य गौतम न्यायदर्शन के प्रर्वतक आचार्य हैं।
- ये मिथिला के निवासी थे।
- इनका समय 200 ई॰पू॰ है।
- इन्होने न्यायदर्शन पर 'न्यायसूत्र' नामक ग्रन्थ लिखा है।
- न्यायसूत्र में पाँच अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में दो आह्निक हैं। इसप्रकार कुल 10 आह्निक हैं।

2. आचार्य वात्स्यायन-(भाष्यकार)

- इनका समय 400 ई॰ है। ये मिथिला निवासी थे।

- इन्होंने न्यायसूत्र पर '**न्यायभाष्य**' नामक विस्तृत भाष्य लिखा है।

3. उद्योतकर- (वार्तिककार)

इनका समय 600ई॰ है। ये काश्मीर के निवासी थे।

- इन्होंने न्यायभाष्य पर न्यायवार्तिक लिखा है।

4. वाचस्पति मिश्र- (तात्पर्याचार्य)

- इनका समय 900 ई0 है। यह भी मिथिला के निवासी थे।
- इनके गुरु का नाम त्रिलोचन था।
- इन्होने न्यायवार्तिक पर '**न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका**' लिखी।
- इन्होंने '**न्यायसूची**' निबन्ध नामक लघुकायग्रन्थ न्यायसूत्रों की रक्षा के लिए लिखा।
- वाचस्पति मिश्र '**सांख्यतत्त्वकौमुदी**' तथा '**योगतत्त्ववैशारदी**' नामक टीकाग्रन्थों में सांख्ययोग की विशद व्याख्या करते हैं।
- '**न्यायकणिका**' तथा '**तत्त्वबिन्दु**' मीमांसा शास्त्र से सम्बन्धित ग्रन्थ हैं।
- ब्रह्मसूत्र शारीरकभाष्य पर लिखी गयी इनकी '**भामतीटीका**' अद्वैत वेदान्त का अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ है।
- अलौकिक पाण्डित्य के कारण इनको '**सर्वतन्त्रस्वतन्त्र**' कहा जाता है।
- न्यायजगत् में ये **तात्पर्याचार्य** के नाम से विख्यात हैं।
- इनका बौद्धदर्शन सम्बन्धी ज्ञान भी उच्चकोटि का था।
- वैशेषिक को छोड़कर पञ्चदर्शनों पर इनकी टीकाएँ प्राप्त होती है।

5. जयन्तभट्ट-

- इनका समय भी 900 ई0 है।
- इन्होंने '**न्यायमञ्जरी**' नामक ग्रन्थ लिखा है।
- न्यायमञ्जरी न्यायसम्प्रदाय का एक मौलिक शोधग्रन्थ है।

6. भासर्वज्ञ-

- इनका समय भी 900 ई0 है।
- ये काश्मीर के निवासी थे।
- इनकी रचना '**न्यायसार**' न्यायसूत्र पर निर्भर एक प्रकरणग्रन्थ है।
- इन्होंने अपने ग्रन्थ न्यायसार पर '**न्यायभूषण**' नामक अत्यन्त विशालकाय टीका लिखी है।

7. उदयनाचार्य-

- इनका समय दसवीं शताब्दी (1000 ई0) है। ये मिथिला निवासी थे।
- तात्पर्याटीका पर इन्होंने '**परिशुद्धि**' नामक टीका लिखी है।
- प्रशस्तपादभाष्य पर '**किरणावली**' नामक टीका लिखी है।
- इन्होंने दो मौलिक ग्रन्थ लिखे हैं
  - * आत्मतत्त्वविवेक (बौद्धधिक्कार)
  - * न्यायकुसुमाञ्जलि

8. गंगेश उपाध्याय-(नव्यनैयायिक)

- इनका समय 13वीं शताब्दी है। ये भी मिथिला निवासी थे।
- इनको **नव्यन्याय का जनक** कहा जाता है।
- इनकी प्रसिद्ध कृति **'तत्त्वचिन्तामणि'** है। इसको **'प्रमाणतत्त्वचिन्तामणि'** या **'चिन्तामणि'** भी कहते हैं।

तत्वचिन्तामणि की टीकायें	
टीका	**टीकाकार**
प्रभा	यज्ञपति उपाध्याय
आलोक	जयदेवमिश्र पक्षधरमिश्र
दीधिति	रघुनाथ शिरोमणि
मूलगादाधरी	गदाधर भट्टाचार्य

9. रघुनाथ शिरोमणि-

- समय-16वीं शताब्दी।
- इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दीधिति' है। जो तत्त्वचिन्तामणि की टीका है।

दीधिति की टीकाएँ	
टीका	**टीकाकार**
रहस्य	मथुरानाथ
जागदीशी	जगदीश भट्टाचार्य
गादाधरी	गदाधर भट्टाचार्य

10. मथुरानाथ-

- समय 16वीं शताब्दी।
- ये रघुनाथ शिरोमणि के शिष्य थे।
- इन्होंने आलोक, चिन्तामणि और दीधिति पर **'गूढार्थप्रकाशिनी रहस्य'** नाम की टीकाएँ लिखी हैं।

11.जगदीश भट्टाचार्य-

- इनका समय 17वीं शताब्दी।
- इन्होंने दीधिति पर **'जागदीशी'** टीका लिखी है।
- शब्दशक्ति पर **'शब्दशक्तिप्रकाशिका'** निबन्ध लिखा है।

12. गदाधरभट्टाचार्य-

- इनका समय भी 17 वीं शताब्दी है।
- इन्होंने दीधिति पर **'गादाधरी'** नामक व्याख्या लिखी है।

- उदयन के 'आत्मविवेक' और तत्त्वचिन्तामणि पर **'मूलगादाधरी'** टीका लिखी है।
- इन्होंने 52 मौलिक ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें **'व्युत्पत्तिवाद'** तथा **'शक्तिवाद'** प्रसिद्ध हैं।
- **न्याय- वैशेषिक के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ-** वरदराज(1250 ई0) की **तार्किकरक्षा**, केशवमिश्र (1300) की **तर्कभाषा**,विश्वनाथ (1700ई0) का **भाषापरिच्छेद** और **सिद्धान्तमुक्तावली** तथा अन्नम्भट्ट (1700 ई0) का **तर्कसंग्रह** आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

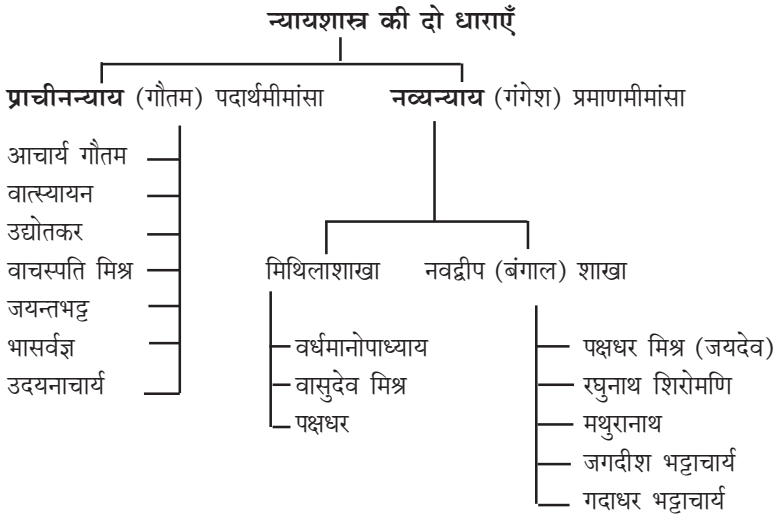

प्राचीनन्याय का महत्त्वपूर्ण साहित्य

न्यायभाष्य	वात्स्यायन	300 ई0
न्यायवार्तिक	उद्योतकर	635 ई0
न्यायवार्तिक-तात्पर्यटीका	वाचस्पति मिश्र	840 ई0
न्यायवार्तिक-तात्पर्यपरिशुद्धि	उदयनाचार्य	984 ई0
न्यायमञ्जरी	जयन्तभट्ट	1000 ई0
न्यायनिबन्धप्रकाश	वर्धमान	1225 ई0
न्यायालङ्कार	श्रीकण्ठ	-
न्यायसूत्रोद्धार	वाचस्पतिमिश्र 2	1450 ई0
न्यायरहस्य	रामभद्र	1630 ई0
न्यायसिद्धान्तमाला	जयराम	1700 ई0
न्यायसूत्रवृत्ति	विश्वनाथ	1634 ई0
न्यायसंक्षेप	गोविन्दखन्ना	1640 ई0

केशवमिश्र का परिचय

- केशवमिश्र ने अपने समय तथा स्थान के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है।
- सुन्दरलाल गोस्वामी के अनुसार केशवमिश्र मिथिला के **सरिसव** गाँव के निवासी थे तथा अभिनव वाचस्पति के प्रपौत्र थे।
- केशवमिश्र का समय 1000 ई॰ से 1400 ई॰ के मध्य निश्चित किया जा सकता है। लगभग 1300 ई0 के आसपास।
- केशवमिश्र अपने समय के मिथिला के श्रेष्ठ नैयायिकों में अन्यतम हैं।
- इन्होंने **'तर्कभाषा'** नामक प्रकरणग्रन्थ की रचना की है। इसके अतिरिक्त **'अलङ्कारशेखर'** भी केशवमिश्र के नाम से जाना जाता है।

तर्कभाषा का परिचय

- तर्कभाषा के लेखक **केशवमिश्र** हैं।
- तर्कभाषा न्यायदर्शन का एक प्रकरणग्रन्थ है।
- इस समस्त ग्रन्थ की रूपरेखा न्याय के आधार पर बनायी गयी है।
- इसमें न्याय को मुख्यधारा बनाकर सम्मिलित रूप से न्याय-वैशेषिक सम्प्रदाय के मन्तव्यों का निरूपण किया गया है।
- तर्कभाषा में मुख्यरूप से न्याय के 16 पदार्थों का वर्णन किया गया है साथ ही वैशेषिक के 7 पदार्थ , 9 द्रव्य, 24 गुणों का भी विस्तार से विवेचन किया गया है।
- इसके अतिरिक्त वैशेषिक के विशिष्ट मन्तव्यों,जैसे- द्वित्वोत्पत्ति की प्रक्रिया, पाकजोत्पत्ति,विभागज विभाग इनका भी तर्कभाषा में उल्लेख है।
- यह ग्रन्थ तुलनात्मक और आलोचनात्मक भी है, इसे उच्चकोटि का शोधग्रन्थ कहा जा सकता है।
- केशवमिश्र की तर्कभाषा न्याय-वैशेषिक सम्प्रदाय का एक अद्वितीय ग्रन्थ है। यह न्यायवैशेषिक का प्रवेशद्वार है तथा भारतीयदर्शन का प्रदीप है।
- तर्कभाषा की सबसे प्राचीन टीका चिन्नभट्ट (14वीं शताब्दी) की **'तर्कभाषा प्रकाशिका'** है।
- तर्कभाषा पर लगभग 14 टीकायें लिखी गयी हैं।

तर्कभाषा की टीकाएँ	
उज्ज्वला	गोपीनाथ
तत्त्वप्रबोधिनी	गणेशदीक्षित
तर्ककौमुदी	दिनकरभट्ट
तर्कभाषा प्रकाश	गोवर्धन मिश्र
तर्कभाषा प्रकाश	अखण्डानन्द सरस्वती

तर्कभाषा प्रकाशिका	चिन्नम्भट्ट
तर्कभाषा प्रकाशिका	गौरीकान्त
तर्कभाषा प्रकाशिका	बलभद्र
तर्कभाषा प्रकाशिका	वागीशभट्ट
तर्कभाषा सारमञ्जरी	माधवदेव
न्यायप्रदीप	विश्वकर्मा
न्यायसंग्रह	रामलिङ्ग
परिभाषादर्पण	भास्करभट्ट

तर्कभाषा का प्रतिपाद्य विषय-

''बालोऽपि यो न्यायनये प्रवेशम्, अल्पेन वाञ्छन्त्यलसः श्रुतेन।
संक्षिप्तयुक्त्यन्वितततर्कभाषा, प्रकाश्यते तस्य कृते मयैषा॥''

- जो आलसी बालक भी थोड़े से अध्ययन के द्वारा न्याय के सिद्धान्तों में प्रवेश करना चाहता है,उसके लिए संक्षिप्त युक्तियों से युक्त यह तर्कभाषा मेरे द्वारा प्रकाशित की जा रही है।
- तर्कभाषा का प्रयोजन अल्प अध्ययन से ही न्याय के सिद्धान्तों का परिचय कराना तथा विवेकपूर्ण बोध कराना।

  ''तर्क्यन्ते प्रतिपाद्यन्ते इति तर्काः प्रमाणादयः षोडशपदार्थाः''

  इसप्रकार 'तर्क' शब्द का अर्थ प्रमाण आदि षोडश पदार्थ किया गया है।
- प्रमाणादि षोडश पदार्थों की व्याख्या करने के कारण इस ग्रन्थ का नाम तर्कभाषा है- **'तर्क्यन्ते प्रतिपाद्यन्ते इति तर्काः (प्रमाणदयः षोडशपदार्थाः) ते भाष्यन्ते अनया इति तर्कभाषा'।**
- **षोडश पदार्थ-** प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्त-अवयव-तर्क-निर्णय-वाद-जल्प-वितण्डा-हेत्वाभास-छल-जाति-निग्रहस्थान' ये सोलह पदार्थ हैं।

  1. प्रमाण- 'प्रमाकरणं प्रमाणम्' प्रमा का करण प्रमाण है।

  2. प्रमेय- जो प्रमा का विषय है वही प्रमेय है।

  3. संशय- ''एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्धनानार्थाविमर्शः संशयः''

  एक धर्मी में परस्पर विरुद्ध अनेक धर्मों के अवमर्श (बोध) को संशय कहते हैं। एक ही वस्तु के बारे में परस्पर विरोधी या परस्पर भिन्न विशेषताओं का एक साथ ज्ञान संशय है।

  4. प्रयोजन- ''येन प्रयुक्तः प्रवर्तते तत् प्रयोजनम्''

  जिससे प्रयुक्त (प्रेरित) होकर मनुष्य किसी कार्य में प्रयुक्त होता है वही, 'प्रयोजन' है। प्रयोजन शब्द की व्युत्पत्ति- 'प्रयुज्यते प्रवर्त्यते अनेन तत् प्रयोजनम्।'

  प्रयोजन का अर्थ है- प्रर्वतक।

5. दृष्टान्त- ''वादिप्रतिवादिनोः संप्रतिपत्तिविषयोऽर्थो दृष्टान्तः''

वादी और प्रतिवादी दोनों की सहमति के विषयभूत अर्थ को 'दृष्टान्त' कहते हैं। दृष्टान्त के दो भेद हैं- साधर्म्य तथा वैधर्म्य।

6. सिद्धान्त -'' प्रामाणिकत्वेनाभ्युपगतोऽर्थः सिद्धान्तः''

जो अर्थ प्रामाणिक रूप से स्वीकृत होता है,उसे सिद्धान्त कहते हैं।

सिद्धान्त के चार भेद हैं -

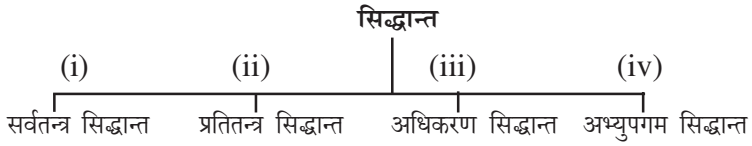

7. अवयव- ''अनुमानवाक्यस्यैकदेशा अवयवाः''

अनुमान वाक्य के एकदेश (अंश) को अवयव कहते हैं।

8. तर्क- '' तर्कोऽनिष्टप्रसङ्गः''

अनिष्ट का प्रसङ्ग (प्राप्ति) होने लगना 'तर्क' है।

9. निर्णय- ''निर्णयोऽवधारणज्ञानम्''

निश्चयात्मक ज्ञान को ही 'निर्णय' कहते हैं।

10.वाद- ''तत्त्वबुभुत्सोः कथा वादः''

तत्त्वज्ञान के इच्छुक वादी-प्रतिवादी की प्रश्नोत्तररूप कथा को 'वाद' कहते हैं।

11. जल्प- ''उभयसाधनवती विजिगीषुकथा जल्पः''

जिस कथा (विचार) में वादी-प्रतिवादी दोनों अपने-अपने पक्षों का साधन, विजय की कामना से करते हैं, उस कथा को 'जल्प' कहते हैं।

- कथा वह वाक्य समूह है जो अनेक वक्ताओं के पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष का प्रतिपादन करता है।
- वाद,जल्प, वितण्डा ये तीन प्रकार की कथाएँ होती हैं

12. वितण्डा- ''स एव स्वपक्षज्ञस्थापनहीनो वितण्डा''

वह (जल्पकथा) ही जब अपने पक्ष की स्थापना से रहित होकर चलती है, उसे वितण्डा कहते हैं।

13. हेत्वाभास- ''तेऽपि कतिपयहेतुरूपयोगाद्धेतुवदाभासमाना हेत्वाभासाः''

असद् हेतु को हेत्वाभास कहते हैं। जो कुछ हेतु रूपों के योग से हेतु के समान आभासित होते हैं 'हेत्वाभास' कहे जाते हैं।

14. छल–'' अभिप्रायान्तरेण प्रयुक्तस्य शब्दस्यार्थान्तरं परिकल्प्य दूषणाभिधानं छलम्''

अन्य अभिप्राय से प्रयुक्त शब्द का अर्थ मानकर दोष दिखलाना 'छल' है।

15.जाति- '' असदुत्तरं जातिः'' अयुक्त या अनुचित उत्तर 'जाति' है।

16. निग्रहस्थान- ''पराजयहेतुः निग्रहस्थानम्''

पराजय (हार) प्राप्त होने में जो निमित्त (कारण) होता है, उसे निग्रहस्थान कहते हैं।

पदार्थ (16)

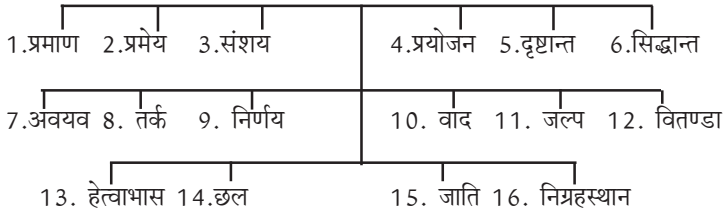

प्रमाण- 'प्रमाकरणं प्रमाणम्' प्रमा का करण प्रमाण है।

प्रमा- 'यथार्थानुभवः प्रमा' यथार्थ अनुभव 'प्रमा' है।

करण- 'साधकतमं करणम्' साधकतम को करण कहते हैं।

कारण का लक्षण- 'यस्य कार्यात् पूर्वभावो नियतोऽनन्यथासिद्धश्च तत्कारणम्' अर्थात् जिसकी सत्ता कार्य से पूर्व निश्चित हो और जो अन्यथासिद्ध (अनावश्यक) न हो उसे कारण कहते हैं। जैसे - तन्तु,वेमा आदि 'पट' के कारण हैं।

- **कारण के तीन प्रकार-** समवायि, असमवायि,निमित्त
- **समवायि कारण-** ''यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम्'' जिसमें समवाय सम्बन्ध से कार्य उत्पन्न होता है वह समवायिकारण है जैसे- तन्तु पट का समवायिकारण है।
- **असमवायिकारण-** '' यत्समवायिकारणप्रत्यासन्नमवधृतसामर्थ्यं तदसमवायिकारणम्'' जो समवायि कारण में रहता हो और कार्योत्पादन करने में जिसका सामर्थ्य निश्चित हो वह असमवायिकारण है। जैसे-तन्तुसंयोग पट का असमवायि कारण है।
- **निमित्तकारण-** 'यन्न समवायिकारणं, नाप्यसमवायिकारणम्, अथ च कारणं तन्निमित्तकारणम्' जो न समवायि है और न असमवायि है फिर भी कारण है, उसे निमित्तकारण कहते है। जैसे- वेमा पट का निमित्तकारण है।

कारण (पट के प्रति)

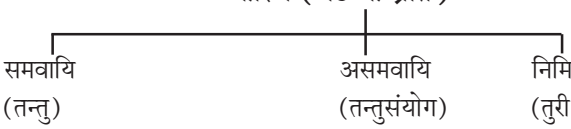

प्रमाण - प्रमाण चार प्रकार के होते हैं- 'प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि'।

प्रत्यक्ष प्रमाण- ''साक्षात्कारिप्रमाकरणं प्रत्यक्षम्''

साक्षात्कारिणी प्रमा के करण को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।

- साक्षात्कारिणी प्रमा दो प्रकार की होती है-(i) सविकल्पक (ii) निर्विकल्पक

➢ साक्षात्कारिणी प्रमा का करण तीन प्रकार का होता है-

(i) कभी इन्द्रिय (ii) कभी इन्द्रिय और अर्थ का सन्निकर्ष (iii) कभी ज्ञान

षोढा सन्निकर्ष-

सन्निकर्ष	इन्द्रिय	विषय
संयोग सन्निकर्ष	चक्षु	घट
संयुक्त समवाय सन्निकर्ष	चक्षु	घटरूप
संयुक्तसमवेत समवाय सन्निकर्ष	चक्षु	घटरूपत्व जाति
समवाय सन्निकर्ष	श्रोत्र	शब्द
समवेत समवाय सन्निकर्ष	श्रोत्र	शब्दत्व
विशेषण- विशेष्यभाव सन्निकर्ष	श्रोत्र	भूतले घटाभाव

अनुमान प्रमाण-'लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम्'

लिङ्ग परामर्श को ही अनुमान कहते हैं।

➢ जिससे अनुमिति की जाती है उसे अनुमान कहते हैं। लिङ्ग परामर्श से अनुमिति की जाती है अतः लिङ्गपरामर्श अनुमान है।

लिङ्ग परामर्श- धूमादि का ज्ञान। अग्नि का ज्ञान अनुमिति है और धूमादि का ज्ञान उस अनुमिति का कारण है।

लिङ्ग- 'व्याप्तिबलेनार्थगमकं लिङ्गम्'

व्याप्ति के आधार पर (बल पर) अर्थ का जो बोधक होता है, उसे लिङ्ग कहते हैं। जैसे - 'धूम' अग्नि का लिङ्ग है।

➢ **व्याप्तिः - साहचर्यनियमो व्याप्तिः'** साहचर्य (साथ-साथ रहना)

नियम को व्याप्ति कहते हैं। जैसे ''यत्र यत्र धूमः,तत्र तत्र वह्निः'' जहाँ-जहाँ धुआँ है। वहाँ-वहाँ अग्नि है।

परामर्श- 'तस्य तृतीयं ज्ञानं परामर्शः'

उसके (लिङ्ग) के तृतीय ज्ञान को परामर्श कहते हैं।

➢ **अनुमान प्रमाण के प्रकार-** 'तच्चानुमानं द्विविधम् स्वार्थं परार्थं चेति' वह अनुमान दो प्रकार का है- (i) स्वार्थानुमान (ii) परार्थानुमान

(i) **स्वार्थानुमान- '' स्वार्थं स्वप्रतिपत्तिहेतुः ''** अपने ज्ञान (प्रतिपत्ति) का निमित्त स्वार्थानुमान है।

जैसे- कोई व्यक्ति स्वयं ही पाकशाला में धूम और अग्नि को साथ देखकर उनके साहचर्य का निश्चय करके,पर्वत के समीप जाकर धूम रेखा को देखता है तो उसका संस्कार उद्बुद्ध हो जाता है और वह 'जहाँ धूम होता है वहाँ अग्नि होती है' इस व्याप्ति का स्मरण करता है तदन्तर यहाँ भी धूम है यह परामर्श करता है उस (लिङ्गपरामर्श) से 'यहाँ पर्वत में भी अग्नि है' इसप्रकार स्वयं ही समझ लेता है। यही स्वार्थानुमान है।

(ii) **परार्थानुमान -**

''यत्तु कश्चित् स्वयं धूमादग्निमनुमाय परं बोधयितुं पञ्चावयवमनुमानवाक्यं प्रयुङ्क्ते तत् परार्थानुमानम्''

जब कोई व्यक्ति स्वयं धूम से अग्नि का अनुमान करके दूसरे को उसका बोध कराने के लिए पाँच अवयव वाले अनुमान वाक्य का प्रयोग करता है, वह परार्थानुमान है।

परार्थानुमान के पाँच अवयव हैं-

1. प्रतिज्ञा- पर्वतोऽग्निमान्

2. हेतु- धूमवत्त्वात्

'' तृतीयान्तं पञ्चम्यन्तं वा लिङ्गप्रतिपादकं वचनं हेतुः''

लिङ्ग को बताने वाला तृतीयान्त अथवा पञ्चम्यन्त वाक्य हेतु है।

- हेतु तीन प्रकार का है-1. अन्वयव्यतिरेकी, 2. केवलान्वयी, 3.केवल व्यतिरेकी
- अन्वय और व्यतिरेकी व्याप्ति से युक्त हेतु अन्वयव्यतिरेकी है।

''स चान्वयव्यतिरेकी, अन्वयेन व्यतिरेकेण च व्याप्तिमत्वात्''

- जहाँ-जहाँ धूमवत्व होता है, वहाँ-वहाँ अग्निमत्व होता है- जैसे महानस में यह अन्वयव्याप्ति है।

यत्र-यत्र धूमवत्वं तत्राग्निमत्वं यथा महानसे इत्यन्वयव्याप्तिः'

- जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ धुँआ भी नहीं होता जैसे- जलाशय में। यह व्यतिरेक व्याप्ति है। **'यत्राग्निर्नास्ति तत्र धूमोऽपि नास्ति यथा - महाह्रदे'**
- केवल व्यतिरेक व्याप्ति से युक्त हेतु केवल व्यतिरेकी कहलाता है।

यथा- **'जीवच्शरीरं सात्मकं प्राणादिमत्वात्'** जीवित शरीर सात्मक है क्योंकि वह प्राण से युक्त है।

- केवल अन्वयव्याप्ति से युक्त हेतु केवलान्वयी कहलाता है।

यथा- शब्दोऽभिधेयः प्रमेयत्वात्। शब्द अभिधेय है प्रमेय होने से

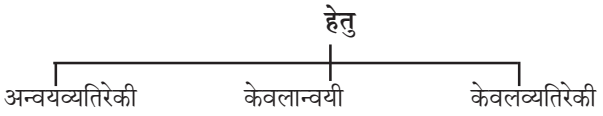

3. उदाहरण- यो यो धूमवान् स सोऽग्निमान्, यथा- महानसः।

4. उपनय- तथा चायम्।

5. निगमन- तस्मात् तथा।

उपमान प्रमाण- ''अतिदेशवाक्यार्थस्मरणसहकृतं गोसादृश्य विशिष्टपिण्डज्ञानमुपमानम्''।

अतिदेश वाक्य (जैसी गाय वैसी नीलगाय) के अर्थ का स्मरण करने के साथ 'गौ की समानता से युक्त पिण्ड (आकृति)का ज्ञान ही 'उपमान प्रमाण' है।

जैसे- **'यथा गौस्तथा गवयः'** जैसी गाय वैसे ही नीलगाय

उपमिति- संज्ञासंज्ञिसम्बन्धप्रतीतिरुपमितिः' अर्थात् सञ्ज्ञा और सञ्ज्ञी के सम्बन्ध की प्रतीति उपमिति है।

शब्दप्रमाण- 'आप्तवाक्यं शब्दः' आप्त का वाक्य शब्द प्रमाण है।

आप्त- यथाभूत का अर्थ ही उपदेश करने वाला पुरुष 'आप्त' कहलाता है।

वाक्य- 'वाक्यं त्वाकांक्षायोग्यतासन्निधिमतां पदानां समूहः'

आकांक्षा- योग्यता और सन्निधि से युक्त पदसमूह वाक्य है।

आकांक्षा का अर्थ है- एक पद का दूसरे के बिना अन्वय बोध न करा सकना।

योग्यता का अर्थ है- पदार्थों के पारस्परिक सम्बन्ध में बाधा न होना

सन्निधि का अर्थ है- पदों का अविलम्ब से उच्चारण किया जाना

पद- पदं च वर्णसमूहः - वर्णों का समूह पद है। समूह का अभिप्राय है एक ज्ञान का विषय होना।

नन्वर्थापत्तिः पृथक् प्रमाणमस्ति- अर्थापत्ति को मीमांसक पृथक् प्रमाण मानते हैं किन्तु नैयायिक इसका अन्तर्भाव अनुमान प्रमाण में करते हैं।

अर्थापत्ति -'अनुपपद्यमानार्थदर्शनात् तदुपपादकीभूतार्थान्तराकल्पना अर्थापत्तिः' अनुपपद्यमान अर्थ को जानकर उसके उपपादक अर्थ की कल्पना अर्थापत्ति है।

अभाव - 'अभाव' को भी पृथक् प्रमाण मानते हैं अभाव का ज्ञान जिस प्रमाण से होता है उसे अभाव प्रमाण कहते हैं। जैसे- 'भूतले घटो नास्ति'।

प्रमाण्यवाद

प्रामाण्य का अर्थ 'ज्ञान का सत्य होना' है और अप्रमाण्य का अर्थ 'ज्ञान का असत्य होना' है।

1. बौद्धमत	प्रामाण्य	स्वतः
	अप्रामाण्य	परतः
2. जैनमत	प्रामाण्य और अप्रामाण्य	परतः (उत्पत्ति)
	प्रामाण्य और अप्रामाण्य	स्वतः (ज्ञाप्ति)
3. सांख्यमत	प्रामाण्य और अप्रामाण्य	स्वतः
4. मीमांसामत	प्रामाण्य	स्वतः
	अप्रामाण्य	परतः
5. न्यायवैशेषिक मत	प्रामाण्य और अप्रामाण्य	परतः

- **प्रमेय-** प्रमा का विषय प्रमेय होता है। जिसके 'ज्ञान' से निःश्रेयस् (मोक्ष) की प्राप्ति में सहायता प्राप्त होती है।
- प्रमेय बारह हैं।

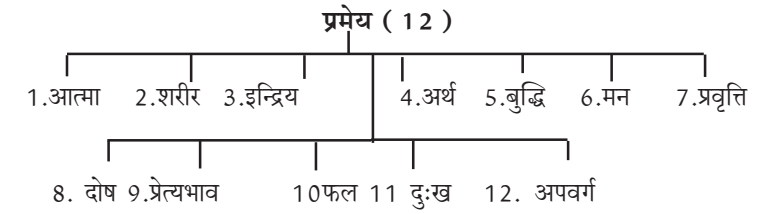

1. आत्मा- 'तत्रात्मत्वसामान्यवानात्मा' आत्मत्व जाति (सामान्य) जिसमें रहती है वह आत्मा है।

- आत्मा देह, इन्द्रिय से भिन्न है, प्रत्येक शरीर में पृथक्-पृथक् है, विभु और नित्य है।
- उस आत्मा का मानस प्रत्यक्ष होता है 'स च मानसप्रत्यक्षः'

2. **शरीर-** 'तस्य भोगायतनमन्त्यावयवि शरीरम्' उस '(आत्मा) के भोग आयतन (आश्रय) अन्त्य अवयवी शरीर है।

- भोग का अर्थ है-सुख दुःख में से किसी एक का प्रत्यक्ष अनुभव।
- 'चेष्टाश्रयो वा शरीरम्' अथवा चेष्टा का आश्रय शरीर है।
- हित की प्राप्ति तथा अहित के परिहार के लिए की जाने वाली क्रिया चेष्टा है।

3. इन्द्रिय- 'शरीरसंयुक्तं ज्ञानकरणमतीन्द्रियम् इन्द्रियम्' शरीर से संयुक्त अतीन्द्रिय का ज्ञान करण 'इन्द्रिय' है।

- **'इन्द्रियाणि षट्-** 'घ्राणरसनाचक्षुस्त्वक्श्रोत्रमनांसि' घ्राण,रसना, चक्षु,त्वक्,श्रोत्र,मन,ये छः इन्द्रियाँ हैं।

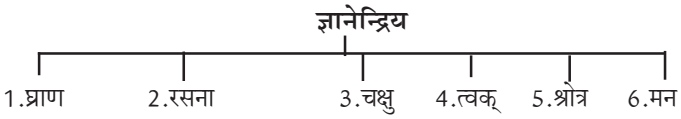

घ्राण- 'गन्धोपलब्धिसाधनमिन्द्रियं घ्राणम्' गन्ध की उपलब्धि का साधन इन्द्रिय घ्राण है। यह नासिका के अग्रभाग में रहती है।

रसना- 'रसोपलब्धिसाधनमिन्द्रियं रसनम्' रस की उपलब्धि का साधन इन्द्रिय रसना है यह जिह्वा के अग्रभाग में रहती है।

चक्षु-'रूपोपलब्धिसाधनमिन्द्रियं चक्षुः' रूप की उपलब्धि का साधन इन्द्रिय चक्षु है। यह नेत्र की काली पुतली में रहती है।

त्वक्- 'स्पर्शोपलब्धिसाधनमिन्द्रियं त्वक्' स्पर्श उपलब्धि का साधन इन्द्रिय त्वक् है। यह सारे शरीर में रहती है।

श्रोत्र- 'शब्दोपलब्धिसाधनमिन्द्रियं श्रोत्रम्' शब्द की उपलब्धि का साधन इन्द्रिय श्रोत्र है। कर्ण के छिद्र में विद्यमान रहती है।

मनस् 'सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः' सुख आदि की उपलब्धि का

साधन इन्द्रिय मन है। हृदय के भीतर रहता है।

इन्द्रिय	स्थान
घ्राण इन्द्रिय	नासिका के अग्रभाग में
रसनेन्द्रिय	जिह्वा के अग्रभाग में
चक्षुरिन्द्रिय	नेत्र की काली पुतली में
त्वक् इन्द्रिय	सारे शरीर में
श्रोत्रेन्द्रिय	कर्ण के छिद्र में
मनस् इन्द्रिय	हृदय के भीतर में

अर्थ- ''अर्थाः षड्पदार्थाः'' अर्थ के अन्तर्गत छः पदार्थ आते है-

अर्थ नामक प्रमेय के अन्तर्गत गृहीत छः पदार्थ-द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय।

द्रव्य- 'समवायिकारणं द्रव्यम् गुणाश्रयो वा' जो समवायिकारण है अथवा गुण का आश्रय है वह द्रव्य है।

- **नौ द्रव्य- 'पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव'**
  पृथिवी,जल,तेज,वायु,आकाश,काल,दिक्,आत्मा,मन- ये नौ द्रव्य हैं।
- **1. पृथिवी- 'पृथिवीत्वसामान्यवती पृथिवी'** नौ द्रव्यों में पृथिवीत्व जाति वाली पृथिवी कहलाती है।
- **2. जल- 'अप्त्वसामान्ययुक्ता आपः'** जलत्व जाति से युक्त जल है।
  जल रसनेन्द्रिय, शरीर, नदी, हिम, ओला के रूप में है।
- **3. तेज- 'तेजस्त्वसामान्यवत् तेजः'** तेजस्त्व सामान्य से युक्त तेज है।
  तेज ग्यारह गुणों वाला होता है।

* नित्य तथा अनित्य के भेद से तेज दो प्रकार का होता है।
* अनित्य तेज चार प्रकार का होता है- उदभूतरूपस्पर्श, अनुद्भूतरूपस्पर्श, अनुद्भूतरूपमुद्भूतस्पर्श, उद्भुतरूपमनुद्भूतस्पर्श

- **4 वायु-** 'वायुत्वाभिसम्बन्धवान् वायुः' वायुत्व के समवाय सम्बन्ध वाला वायु है।

* वायु नौ गुणों वाला है- स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व,संयोग, विभाग,परत्व अपरत्व,तथा वेग।

- **5. आकाश-** 'शब्दगुणकमाकाशम्' जिसमें शब्द गुण रहता है उसे आकाश कहते हैं।

* आकाश छः गुणों से युक्त है- शब्द,संख्या,परिमाण,पृथक्त्व,संयोग,विभाग।
* आकाश एक, नित्य और व्यापक है और उसका अनुमापक शब्द है।

- **6. काल- 'कालोऽपि दिग्विपरीतपरत्वापरत्वानुमेयः'** दिशा से भिन्न परत्व अपरत्व द्वारा काल का अनुमान किया जाता है।

* काल पाँच गुणों से युक्त होता है - संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग।

* काल एक, नित्य तथा विभु है।
- **7. दिक्-** 'दिग् एका नित्या विभ्वी च' दिशा एक, नित्य तथा विभु है।
* संख्या, परिमाण,पृथक्त्व,संयोग,विभाग,नामक,पाँच गुणों वाला है।
- **8. आत्मा- 'आत्मत्वाभिसम्बन्धवान् आत्मा'** आत्मत्व के समवाय सम्बन्ध वाला आत्मा है।
- **9. मन- 'मनस्त्वाभिसम्बन्धवन्मनः'** मनस्त्व जाति के समवाय सम्बन्ध वाला मन है। मन आठ गुणों वाला है- संख्या, परिमाण,पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व संस्कार।
- **गुण- 'सामान्यमान् असमवायिकारणं अस्पन्दात्मा गुणः'** सामान्य से युक्त, असमवायिकारण वाला, कर्मस्वरूप न होने वाले को गुण कहते हैं।

* गुण द्रव्य के आश्रित रहते हैं।
* गुणों की संख्या 24 है-रूप,रस,गन्ध,स्पर्श,संख्या,परिमाण,पृथक्त्व,संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व,गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार।

1. **रूप-** 'रूपं चक्षुर्मात्रग्राह्यो विशेषगुणः' जो चक्षु से ग्रहण होता है वह रूप नामक गुण है।
2. **रस-**'रसो रसनेन्द्रियग्राह्यो विशेषगुणः' जो रसनेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किया जाय वह रस है।
3. **गन्ध-** 'गन्धो घ्राणग्राह्यो विशेषगुणः पृथिवीमात्रवृत्तिः' जिसे घ्राणेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किया जाय वह गन्ध नामक गुण है। सुगन्ध तथा दुर्गन्ध के भेद से गन्ध दो प्रकार का है।
4. **स्पर्श-** 'स्पर्शस्त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यो विशेषगुणः' जो त्वक् इन्द्रिय द्वारा ग्रहण करने योग्य है वह स्पर्श नामक गुण है।

- स्पर्श के तीन भेद - शीत,उष्ण,अनुष्णाशीत।
- जल में शीत स्पर्श, तेज में उष्ण स्पर्श, पृथिवी और वायु में अनुष्णाशीत स्पर्श रहता है।

5. **संख्या-** 'संख्या एकत्वादिव्यवहारहेतुः सामान्यगुणः' जो एकत्व आदि व्यवहार का निमित्त होता है वह संख्या नामक विशेष गुण है।
6. **परिमाण-** 'परिमाणं मानव्यवहारासाधारणं कारणम्' माप के व्यवहार का असाधारण कारण परिमाण है।

- परिमाण चार प्रकार का होता है- अणु,महद्,दीर्घ,ह्रस्व।

7. **पृथक्त्व -** 'पृथक्त्वं पृथग्व्यवहारासाधारणं कारणम्' **पृथक्त्व** के व्यवहार का असाधारण कारण पृथक्त्व है। पृथक्त्व दो प्रकार का है- एकपृथक्त्व, द्विपृथक्त्व।
8. **संयोग-** 'संयोगः संयुक्तव्यवहारहेतुर्गुणः' जो संयुक्त व्यवहार का निमित्त गुण होता है

उसे संयोग नामक गुण कहते हैं। संयोग तीन प्रकार का है- अन्यतरकर्मज, उभयकर्मज, संयोगज।

9. **विभाग-**'विभागोऽपि विभक्तप्रत्ययहेतुः' विभक्त प्रतीति का कारण विभाग है। विभाग भी तीन प्रकार का होता है- अन्यतरकर्मज, उभयकर्मज, विभागज।

10. **परत्व तथा अपरत्व-** 'परत्वापरत्वे परापरव्यवहारासाधारणकारणे' पर तथा अपर व्यवहार का असाधारण कारण परत्व तथा अपरत्व है। परत्व तथा अपरत्व दो प्रकार का होता है- दिक्कृत तथा कालकृत।

11. **गुरुत्व-** 'गुरुत्वमाद्यपतनासमवायिकारणम्' प्रथमपतन का असमवायिकारण गुरुत्व है। गुरुत्व पृथिवी तथा जल में रहता है। संयोग, वेग, प्रयत्न के अभाव में गुरुत्व के कारण पतन होता है।

12. **द्रवत्व-**'द्रवत्वमाद्यस्यन्दनासमवायिकारणम्' प्रथम स्पन्दन का असमवायिकारण द्रवत्व है। द्रवत्व-भूमि, तेज और जल में रहता है।

13. **स्नेह-** 'स्नेहश्चिक्कणता जलमात्रवृत्तिः' चिकनापन ही स्नेह है।स्नेह केवल जल में रहता है।

14. **शब्द-** 'शब्दः श्रोत्रग्राह्यो गुणः' जिसका श्रोत्र के द्वारा ग्रहण किया जाता है उसे शब्द नामक गुण कहते है। शब्द आकाश का विशेष गुण है।

15. **बुद्धि-** 'अर्थप्रकाशो बुद्धिः' अर्थ का प्रकाशन बुद्धि है। ईश्वर की बुद्धि नित्य होती है जबकि अन्य की बुद्धि अनित्य होती है।

16. **सुख-** 'प्रीतिः सुखम्'। 'तच्च सर्वात्मनामनुकूलवेदनीयम्' प्रीति को सुख कहते हैं।सुख का समस्त आत्माओं के द्वारा प्रतिकूल रूप में अनुभव किया जाता है।

17. **दुःख-** 'पीडा दुःखम् '। 'तच्च सर्वात्मनां प्रतिकूलवेदनीयम्' पीड़ा का नाम दुःख है। दुःख का समस्त आत्माओं के द्वारा प्रतिकूल रूप में अनुभव किया जाता है।

18. **इच्छा-** 'राग इच्छा' राग को इच्छा कहते हैं।

19. **द्वेष-** 'क्रोधो द्वेषः' क्रोध को द्वेष कहते हैं।

20. **प्रयत्न-** 'उत्साहः प्रयत्नः' उत्साह को प्रयत्न कहा गया है।

21. बुद्धि आदि छः गुणो का मानस प्रत्यक्ष होता है।

22-23. **धर्म तथा अधर्म-** 'धर्माऽधर्मौ सुखदुःखयोरसाधारणकारणे' सुख तथा दुःख के असाधारण कारण धर्म तथा अधर्म हैं।

24. **संस्कार-** 'संस्कारव्यवहाराऽसाधारणं कारणं संस्कारः' संस्कार सम्बन्धी व्यवहार का असाधारण कारण संस्कार है। संस्कार तीन प्रकार का होता है- वेग, भावना तथा स्थितिस्थापक।

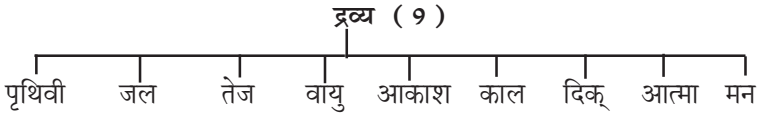

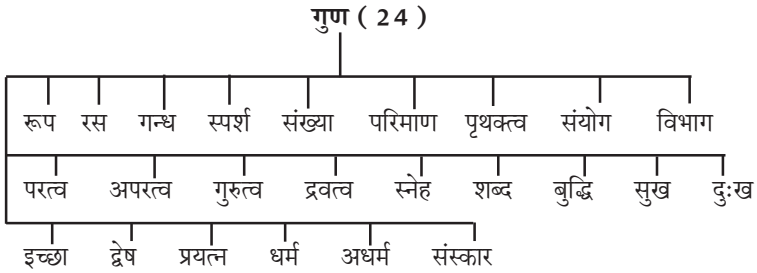

कर्म- 'चलनात्मकं कर्म' कर्म का स्वरूप है क्रिया (चलना,हिलना,गति)

कर्म के पाँच भेद- उत्क्षेपण, अपक्षेपण,आकुञ्चन,प्रसारण,गमन।

- ऊर्ध्वगति उत्क्षेपण,अधोगमन को अपक्षेपण,सिकुड़ना को आकुञ्चन, फैलना को प्रसारण, प्रस्थान करना को गमन कहते हैं।

सामान्य- 'अनुवृत्तिप्रत्ययहेतुः सामान्यम्' समानाकारक प्रतीति का हेतु सामान्य (जाति) है।

विशेष- 'विशेषो नित्यो नित्यद्रव्यवृत्तिः' विशेष नित्य है। यह नित्य द्रव्यों में रहता है।

समवाय- 'अयुतसिद्धः सम्बन्धः समवायः' अयुतसिद्धों (पदार्थों) का सम्बन्ध समवाय है।

अभाव-द्रव्य आदि छः पदार्थों से भिन्न जो पदार्थ है वह अभाव नाम का सातवाँ पदार्थ है।

अभाव दो प्रकार का है- संसर्गाभाव तथा अन्योन्याभाव।

- संसर्गाभाव के तीन भेद हैं - प्रागभाव,प्रध्वंसाभाव तथा अत्यन्ताभाव।

प्रागभाव- 'उत्पत्तेः प्राक् कारणे कार्यस्याभावः प्रागभावः' उत्पत्ति से पूर्व जो कारण में कार्य का अभाव होता है। जैसे- तन्तुषु पटाभावः स चानादिरुत्पत्तेरभावात् अर्थात् तन्तुओं में पट का अभाव प्रागभाव है।

- **प्रध्वंसाभाव- 'उत्पन्नस्य कारणेऽभावः प्रध्वंसाभावः'** उत्पन्न का जो उसके कारण में अभाव होता है उसे प्रध्वंसाभाव कहते हैं।

जैसे - भग्ने घटे कपालमालायां घटाभावः अर्थात् घट के टूट जाने पर कपालों में घट का अभाव हो जाता है।

- **अत्यन्ताभाव-** 'त्रैकालिकोऽभावोऽत्यन्ताभावः'तीनों कालों में रहने वाला त्रैकालिक अभाव अत्यन्ताभाव है। जैसे- 'वायौ रूपाभावः' वायु में रूप का अभाव
- **अन्योन्याभाव-** 'अन्योन्याभावस्तु तादात्म्यप्रतियोगिताकोऽभावः' अन्योन्याभाव वह अभाव है जिसका प्रतियोगी तादात्म्य अभेद होता है। अथवा जिसका प्रतियोगी तादात्म्य सम्बन्ध से युक्त होता है। जैसे- 'घटः पटः न भवति' अर्थात् घट पट नहीं है।

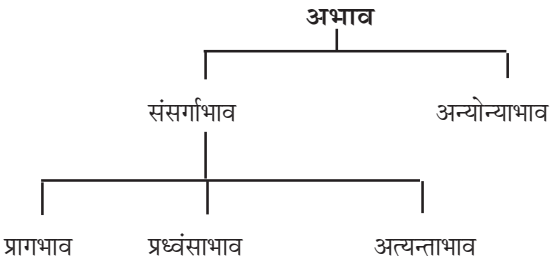

- **5. बुद्धि-** 'अर्थप्रकाशो बुद्धिः' अर्थ का ज्ञान बुद्धि है।
  बुद्धि के दो भेद- अनुभव तथा स्मरण।
- अनुभव दो प्रकार का होता है- यथार्थ अनुभव, अयथार्थ अनुभव
- **यथार्थ अनुभव-** 'यथार्थोऽविसंवादी' अर्थ के विपरीत न होने वाला यथार्थ अनुभव है।
- **अयथार्थ अनुभव-** 'अयथार्थस्तु अर्थव्यभिचारी,अप्रमाणजः' अयथार्थ अनुभव अर्थ का अनुसरण नहीं करता क्योंकि वह प्रमाण से उत्पन्न नहीं होता।
- अयथार्थ अनुभव तीन प्रकार का है- संशय,तर्क, विपर्यय।
- **संशय- 'एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्धनानार्थविमर्शः संशयः'** एक धर्मी में अनेक विरुद्ध धर्मों का ज्ञान संशय है।
- संशय तीन प्रकार का है- विशेष का दर्शन न होने पर 1. समान धर्म के दर्शन से उत्पन्न 2. विरुद्धार्थप्रतिपादक वचनों से उत्पन्न 3. असाधारण धर्म के दर्शन से उत्पन्न।
- **तर्क-** 'तर्कोऽनिष्टप्रसङ्गः' अनिष्ट की प्राप्ति होने लगना तर्क है।
- **विपर्यय- 'विपर्ययस्तु अतस्मिंस्तद्ग्रहः'**अन्य वस्तु में उस वस्तु का ज्ञान विपर्यय अर्थात् भ्रम है। जैसे- **'शुक्तिकादौ रजतारोपः इदं रजतम्'** रजत से भिन्न सीपी आदि में रजत का भान होना विपर्यय है।
- **स्मरण -** स्मरण दो प्रकार का होता है - यथार्थ स्मरण तथा अयथार्थ स्मरण

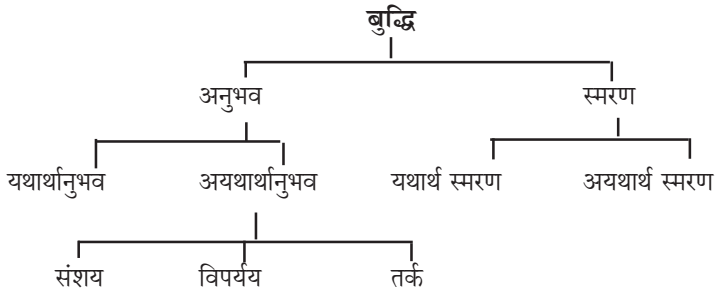

6. मन- 'अन्तरिन्द्रियं मनः' आन्तरिक इन्द्रिय (अन्तःकरण) मन है।

7.प्रवृत्ति- 'प्रवृत्तिः धर्माऽधर्ममयी वागादिक्रिया' धर्म- अधर्म का जनक वाणी आदि का कर्म ही प्रवृत्ति है।

8. दोष- 'दोषा रागद्वेष मोहाः' राग (इच्छा), द्वेष (मन्यु या क्रोध), मोह (मिथ्याज्ञान या विपर्यय) दोष हैं।

9. प्रेत्यभाव- 'पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः' पुनः उत्पन्न होना प्रेत्यभाव है।

10. फल- 'फलं पुनर्भोगः सुखदुःखान्यतरसाक्षात्कारः' सुख अथवा दुःख में से किसी एक के अनुभव रूप भोग को फल कहते हैं।

11. दुःख- ' पीडा दुःखम्' पीड़ा को दुःख कहते हैं यह जीवात्मा का विशेष गुण है जिसकी उत्पत्ति पाप (अधर्म) से होती है।

12. अपवर्ग- 'मोक्षोऽपवर्गः' मोक्ष को अपवर्ग कहते हैं।

- मोक्ष का अर्थ है - इक्कीस प्रकार के दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति।
- दुःखों के इक्कीस भेद - शरीर,षट्इन्द्रिय,षट्विषय,षट्ज्ञान (बुद्धि) सुख,दुःख।

अवयव- 'अनुमानवाक्यस्यैकदेशा अवयवाः' अनुमान वाक्य के अंश अवयव कहलाते हैं।

इनके पाँच भेद हैं- प्रतिज्ञा, हेतु,उदाहरण,उपनय,निगमन

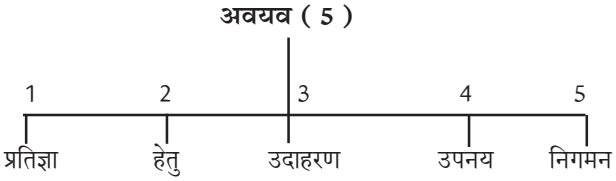

हेत्वाभास

- असद् हेतु को हेत्वाभास कहते हैं,जो हेतु नहीं होता किन्तु हेतु के समान भासित होता है। हेत्वाभास शब्द के दो अर्थ हैं- 1. हेतु का दोष 2. दुष्ट हेतु

1. हेतु का दोष- 'आभासते इत्याभासः हेतोराभासः हेत्वाभासः'

जिसके ज्ञान से अनुमिति के कारण अथवा साक्षात् अनुमिति ही प्रतिबन्ध हो जाता है, वह हेत्वाभास या हेतुदोष कहलाता है।

2. दुष्ट हेतु- 'हेतुवद् आभासते इति हेत्वाभासः' जो हेतु के समान भासित होता है वस्तुतः दोष युक्त होने के कारण हेतु नहीं होता है हेत्वाभास कहलाता है।

- हेतु के पाँच रूप- पक्षसत्त्व, सपक्षसत्त्व, विपक्षव्यावृत्तत्व, अबाधितविषयत्व,असत्प्रतिपक्षत्व
- **'उक्तानां पक्षधर्मत्वादिरूपाणां मध्ये येन केनापि रूपेणहीना अहेतवः'**

अर्थात् पक्षधर्मता पक्षसत्त्व आदि हेतु के पाँच रूपों में से किसी एक रूप से भी रहित हेतु अहेतु है।

- हेत्वाभास की संख्या पाँच है- असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक, प्रकरणसम, कालात्ययापदिष्ट।
- **1. असिद्ध हेत्वाभास- 'लिङ्गत्वेनानिश्चितोहेतुरसिद्धः'** लिङ्ग के रूप में निश्चित न होने वाला हेतु असिद्ध हेत्वाभास।
- असिद्ध हेत्वाभास के तीन भेद- आश्रयासिद्ध,स्वरूपासिद्ध,व्याप्यत्त्वासिद्ध
- **आश्रयासिद्ध हेत्वाभास- 'यस्य हेतोराश्रयो नावगम्यते स आश्रयासिद्धः'** जिस हेतु के आश्रय का ही अभाव होता है उसे आश्रयासिद्ध हेत्वाभास कहते हैं। जैसे- गगनारविन्दं सुरभि,अरविन्दत्वात् सरोजारविन्दवत्।
- **स्वरूपासिद्ध हेत्त्वाभास- 'यो हेतुराश्रये नावगम्यते'** जो हेतु आश्रय में सिद्ध नहीं होता है उसे स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास कहते हैं।
  जैसे- 'अनित्यः शब्दः चाक्षुषत्त्वात् घटवत्।'
- **व्याप्यत्त्वासिद्ध- 'यत्र हेतोर्व्याप्तिर्नावगम्यते'** जहाँ हेतु में व्याप्ति सिद्ध नहीं होती है वह व्याप्यत्त्वासिद्ध हेत्वाभास होता है।
  व्याप्यत्त्वासिद्ध दो का प्रकार है एक साध्य के साथ सहचर न रहने वाला तथा दूसरा उपाधियुक्त साध्य से सम्बन्ध रखने वाला। जैसे- शब्दः क्षणिकः सत्त्वात् तथा क्रत्वन्तवर्तिनी हिंसा अधर्मसाधनं, हिंसात्त्वात् क्रतुबाह्यहिंसावत्।

असिद्ध हेत्वाभास के तीन भेद

आश्रयासिद्ध	**स्वरूपासिद्ध**	**व्याप्यत्त्वासिद्ध**
(गगनारविन्दम् सुरभि, अरविन्दत्वात् सरोजारविन्दवत्)	(अनित्यः शब्दः, चाक्षुषत्त्वात् घटवत्)	(शब्दः क्षणिकः सत्त्वात् क्रत्वन्तवर्तिनी हिंसा अधर्मसाधनं, हिंसात्त्वात् क्रतुबाह्यहिंसावत्)

2. विरुद्ध हेत्वाभास- 'साध्यविपर्ययव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः' साध्य के अभाव से व्याप्त हेतु विरुद्ध हेत्वाभास कहलाता है।
जैसे- **'शब्दो नित्यः कृतकत्वादात्मवत्'**

3. अनैकान्तिक हेत्वाभास - 'सव्यभिचारोऽनैकान्तिकः' सव्यभिचार हेतु अनैकान्तिक हेत्वाभास है।

- अनैकान्तिक हेत्वाभास के दो भेद- 1. साधारण अनैकान्तिक 2. असाधारण अनैकान्तिक
- **साधारण अनैकान्तिक-** 'पक्षसपक्षविपक्षवृत्तिः साधारणः' पक्ष,सपक्ष तथा विपक्ष में रहने वाला साधारण अनैकान्तिक है। जैसे- शब्दो नित्यः प्रमेयत्त्वात् व्योमवत्।
- **आसाधारण अनैकान्तिक- 'सपक्षाद् विपक्षाद् व्यावृत्तो यः पक्ष एव वर्तते सोऽसाधारणानैकान्तिकः'** जो सपक्ष तथा विपक्ष में नहीं रहता केवल पक्ष में ही रहता है वह असाधारण अनैकान्तिक है।
  जैसे- भूर्नित्या गन्धवत्त्वात्।

अनैकान्तिक हेत्वाभास के दो भेद

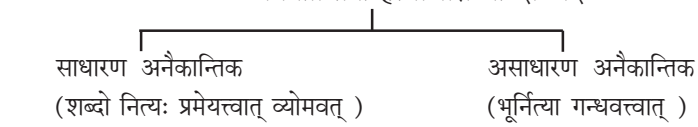

- **4. प्रकरणसम हेत्वाभास - 'यस्य हेतोः साध्यविपरीतसाधकं हेत्वन्तरं विद्यते'** जिस हेतु के साध्य के विपरीत अर्थ का दूसरा हेतु विद्यमान होता है वह प्रकरणसम हेत्वाभास हैं। जैसे- **शब्दोऽनित्यो नित्यधर्मरहितत्त्वात्।**
- प्रकरणसम हेत्वाभास को सत्प्रतिपक्ष भी कहते हैं।
- **5. बाधितविषय या कालात्ययापदिष्ट-** 'प्रमाणान्तरावधृतसाध्याभावो हेतुर्बाधितविषयः कालात्ययापदिष्ट' अथवा प्रत्यक्षादिप्रमाणेन पक्षे 'साध्याभावः परिच्छिन्नः स कालात्ययापदिष्टः' प्रत्यक्षादि प्रमाण के द्वारा पक्ष में जिस हेतु के साध्य का अभाव निश्चित कर लिया जाता है वह 'कालात्ययापदिष्ट' है इसे 'बाधितविषय' भी कहा जाता है।
  जैसे- **अग्निरनुष्णः कृतकत्त्वाज्जलवत्।**

हेत्वाभास के पाँच भेद

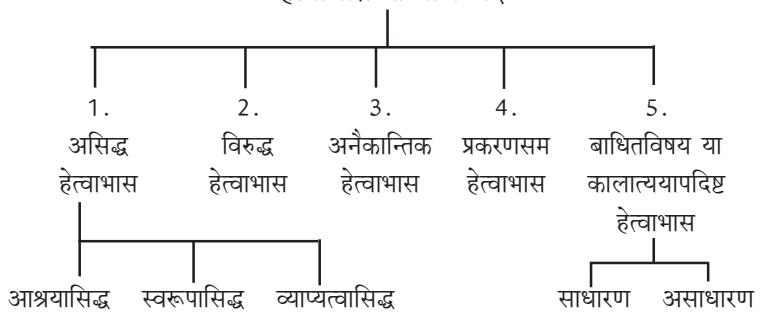

❑❑

4. तर्कसंग्रह

अन्नम्भट्ट कृत तर्कसंग्रह

- न्यायदर्शन का समानतन्त्र वैशेषिक दर्शन है।
- वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक **महर्षि कणाद** हैं इन्हें काश्यप, उलूक, पैलुक एवं औलूकाय भी कहा जाता है।
- इस दर्शन का वैशेषिकदर्शन नाम इसलिए पड़ा क्योंकि यह 'विशेष' नामक पदार्थ को मानता है। इस दर्शन को **काणाद, काश्यपीय, औलूक्य एवं पैलुकदर्शन** के नाम से भी जानते हैं। विशिष्यते सर्वतः व्यवच्छिद्यते येन सः विशेषः।
  (1) विशेषाभ्याम् (चतुर्थी द्विव0) व्यवच्छेदकाभ्यां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रभवति इति वैशेषिकम्
  (2) विशेषाभ्याम् (तृतीया द्विव0) व्यवहरति इति वैशेषिकं दर्शनम्।
- तर्कसंग्रहकार अन्नम्भट्ट कणाद को आदर पूर्वक स्मरण करते हैं - **''काणादन्यायमतयोर्बालव्युत्पत्तिसिद्धये''**
- पद्मपुराण में भी कणाद का उल्लेख है - **''कणादेन तु सम्प्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत्''**
- अन्यत्र भी इनका उल्लेख प्राप्त होता है- **''काणादं पाणिनीयं च सर्वशास्त्रोपकारकम्''**
- **माधवाचार्य** ने अपने **सर्वदर्शनसंग्रह** में वैशेषिकदर्शन के लिए 'औलूक्यदर्शन' शब्द का ही प्रयोग किया है।
- कणादविरचित '**वैशेषिकसूत्र**' में **370 सूत्र** एवं **दस अध्याय** हैं। प्रत्येक अध्याय में दो -दो आह्निक हैं, इसप्रकार कुल 20 आह्निक हैं।
- वैशेषिकदर्शन **न्याय से पूर्ववर्ती** माना जाता है।
- इस दर्शन का प्रमुख लक्ष्य धर्म की व्याख्या करना है ''अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः'' इस दर्शन में धर्म की एक विशेष परिभाषा की गयी है- ''यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः '' अर्थात् जिससे इहलौकिक व पारलौकिक सुख की प्राप्ति हो, वही धर्म है।
- वैशेषिकदर्शन की मान्यता है कि अन्यान्य पदार्थों में पाया जाने वाला समान गुण उसका सामान्य कहलाता है, तथा वह विशिष्ट सत्ता जो एक वस्तु को अन्य वस्तुओं

से पृथक् करे विशेष कहलाती है, वस्तुतः पदार्थों का अन्तिम अवशिष्ट अंश ही उसका विशेष है। ' अन्त्यावशेषः विशेषः'

- वैशेषिकों का विशेष सिद्धान्त है-परमाणुकारणवाद।

वैशेषिक दर्शन के प्रमुख आचार्य

1. कणाद- इनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है फिर भी कुछ ग्रन्थों में इनके विषय में निम्न तथ्य प्राप्त होते हैं-

- वायुपुराण में इन्हें प्रभासनिवासी सोमशर्मा का शिष्य और शिव का अवतार बताया गया है।
- किरणावली में उदयनाचार्य ने इन्हें कश्यप मुनि का पुत्र बताया है। त्रिकाण्डकोश में इनके अन्य नाम 'काश्यप' का उल्लेख है।
- पृथ्वी पर गिरे हुए कणों अर्थात् दानों के द्वारा अपना जीवन यापन करने के कारण इन्हें 'कणाद' (कण+ आद) कहा जाता है।
- ''कणान् अत्ति इति कणादः'' इसीकारण इन्हें 'कणभुक्', 'कणभक्ष' तथा 'कणव्रत' भी कहा जाता है।
- **समय -**कुछ विद्वान् इनका समय 150 ईसापूर्व तथा कुछ 400 ईसापूर्व मानते हैं।

2. प्रशस्तपाद- महर्षि कणाद के वैशेषिकसूत्रों के क्रम को अपने अनुसार क्रमबद्ध करके एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की, जिसका नाम ''**पदार्थधर्मसंग्रह**'' रखा। प्रणम्यहेतुमीश्वरं मुनिं कणादमन्वतः।

प्रवक्ष्यते महादेयः पदार्थधर्मसंग्रहः।। (प्रशस्तपादभाष्य)

- यही **'पदार्थधर्मसंग्रह'** आज **'वैशेषिकभाष्य'** एवं **'प्रशस्तपादभाष्य'** के नाम से प्रसिद्ध है।
- इसे उपलब्ध वैशेषिक भाष्यसाहित्य में प्रथम एवं प्रामाणिक भाष्य कहा जा सकता है।
- इसकी मौलिक शैली के कारण कुछ विद्वान् इसे वैशेषिक सूत्रों का भाष्य न मानकर इसे स्वतन्त्र एवं मौलिकग्रन्थ मानते हैं।
- इसे वैशेषिक दर्शन का प्रवेशद्वार माना जाता है।
- प्रशस्तपाद के समय के विषय में विद्वानों में मतभेद है,कुछ लोग चतुर्थ शताब्दी तथा कुछ विद्वान् पाँचवीं शताब्दी में इनका समय मानते हैं।

प्रशस्तपादभाष्य के टीका ग्रन्थ

टीका	टीकाकार	समय
* व्योमवती (व्योमशिव / व्योमकेशी)	व्योमशिवाचार्य	980 ई0
* किरणावली	उदयनाचार्य	984 ई0
* न्यायकन्दली	श्रीधराचार्य	991 ई0

* लीलावती	श्रीवत्साचार्य	1025 ई0
* सूक्ति	श्रीजगदीशतर्कालङ्कार	1590 ई0
* सेतु	आचार्य पद्मनाभमिश्र	16वीं शताब्दी उत्तरार्ध
* भाष्यनिकष	आचार्य कोलाचल मल्लिनाथ	1850 ई0
* कणादरहस्य	आचार्य शङ्कर मिश्र	

3. शिवादित्य मिश्र - इनके तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं-

(1) सप्तपदार्थी (2) लक्षणमाला (3) हेतुखण्डन

समय- 975 ई0 से 1025 ई0 के मध्य।

4. वल्लभाचार्य - मिथिला के निवासी।
- समय 12 वीं शताब्दी।
- ग्रन्थ- न्यायलीलावती।

न्यायलीलावती की टीकायें

टीका	टीकाकार	समय
* न्यायलीलावती-प्रकाश	पं0वर्धमानोपाध्याय	1250 ई0
* न्यायलीलावती-विवेक	पक्षधर मिश्र	1275 ई0
* न्यायलीलावती-कण्ठाभरण	शङ्कर मिश्र	1450 ई0
* न्यायलीलावती-वर्धमानेन्दु	अभिनव वाचस्पति	1450 ई0
* न्यायलीलावती-विभूति	रघुनाथ शिरोमणि	1547 ई0
* न्यायलीलावती-रहस्य	मथुरानाथ तर्कवागीश	1580 ई0
* न्यायलीलावती-प्रकाश	श्रीरामकृष्णभट्टाचार्य	1570 ई0

अन्नम्भट्ट का परिचय

- अन्नम्भट्ट सोमयाजी तिरुमलाचार्य के पुत्र थे।
- इनका जन्म आन्ध्रप्रदेश के गरिकापाद नामक स्थान पर हुआ था।
- ये तैलङ्ग ब्राह्मण थे।
- समय - 17 वीं शताब्दी
- अग्रज का नाम रामकृष्णभट्ट
- आज भी कृष्णा नदी के तट पर चित्तूर के समीप के रावपुर गाँव में अन्नम्भट्टगोत्रीय ऋग्वेदीय ब्राह्मण रहते हैं।
- कुछ विद्वान् अन्नम्भट्ट को कर्नाटकदेशीय भी मानते हैं।
- ऐसी मान्यता है कि अन्नम्भट्ट ने काशी में अध्ययन किया था इससे सम्बद्ध एक मुहावरा संस्कृतजगत् में प्रसिद्ध है कि-'**काशीगमनमात्रेण नान्नम्भट्टायते द्विजः**' अर्थात् काशी में जाने मात्र से ही कोई अन्नम्भट्ट नहीं बन जाता। इस कथन से उनके

वैदुष्य तथा विलक्षण प्रतिभा का सङ्केत मिलता है।

- अन्नम्भट्ट न्याय एवं वैशेषिक के साथ-साथ वेदान्त एवं व्याकरणशास्त्र के भी प्रकाण्डपण्डित थे।

रचनायें -

- तर्कसंग्रह (न्याय वैशेषिक का प्रकरण ग्रन्थ)
- दीपिका टीका (तर्कसंग्रह के ऊपर लिखी गयी टीका)
- जयदेव के तत्त्वचिन्तामण्यालोक ग्रन्थ पर 'सिद्धाञ्जन' टीका
- ब्रह्मसूत्र पर 'मिताक्षरा' टीका
- उदयनाचार्य विरचित न्यायपरिशिष्ट पर 'प्रकाश' टीका
- तन्त्रवार्तिक पर 'सुबोधिनी सुधासार' टीका
- अष्टाध्यायी पर 'मिताक्षरा' टीका
- कात्यायन के शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य पर भाष्य।

तर्कसंग्रह का परिचय

- तर्क्यन्ते प्रतिपाद्यन्ते इति तर्काः। 'तर्काणां संग्रहः इति तर्कसंग्रहः' इस ग्रन्थ में द्रव्यादि सप्त पदार्थों का प्रमाणपूर्वक संग्रह किया गया है, अतः इसे तर्कसंग्रह कहा गया है।
- जिसके द्वारा प्रमेय पदार्थों का ज्ञान प्राप्त किया जाय, वह तर्क अथवा प्रमाण ही तर्कसंग्रह है - 'तर्क्यते अनेन इति तर्कः प्रमाणम्।'
- तर्कसंग्रह के मंगलाचरण में ही अन्नम्भट्ट ने कहा है कि- **''बालानां सुखबोधाय क्रियते तर्कसंग्रहः''** अर्थात् बच्चों के समझाने के लिए, वैशेषिकदर्शन में सहज रूप से प्रवेश कराने के लिए इस विषय के जिज्ञासु बालबुद्धि लोगों के लिए इस ग्रन्थ का प्रणयन किया जा रहा है।
- अन्नम्भट्ट विरचित तर्कसंग्रह न्यायवैशेषिक दर्शन का प्रवेशद्वार है
- दार्शनिक दृष्टि से **तर्कसंग्रह वैशेषिक-प्रधान प्रकरणग्रन्थ है।**
- यह ग्रन्थ न्याय-वैशेषिक विचारधारा की गीता है अन्नम्भट्ट की यह कृति **'बालगादाधरी'** कहलाती है।

तर्कसंग्रह की कुछ प्रसिद्ध टीकायें

1. तर्कदीपिका	-	अन्नम्भट्ट
2. तर्कसंग्रह चन्द्रिका	-	मुकुन्दभट्ट गाडगिल
3. सिद्धान्तचन्द्रोदय	-	कृष्णधूर्जटि दीक्षित
4. तर्कसंग्रह टीका	-	श्री अनन्त नारायण
5. तर्कसंग्रह टीका	-	गौरीकान्त
6. तर्कसंग्रह टीका	-	रमानाथ
7. तर्कसंग्रह टीका	-	विश्वनाथ

8. तर्कसंग्रह तत्त्वप्रकाश (नीलकण्ठी)-		नीलकण्ठ
9. तर्कसंग्रह तरंगिणी	-	विन्ध्येश्वरी प्रसाद
10. तर्कसंग्रह वाक्यार्थ	-	मध्वगोविन्द हरबल
11. तर्कसंग्रह व्याख्या	-	मुरारि
12. निरुक्ति	-	जगन्नाथ शास्त्री
13. न्यायचन्द्रिका	-	केशवभट्ट
14. न्यायबोधिनी	-	गोवर्धन
15. न्यायबोधिनी	-	रत्ननाथ शुक्ल
16. न्यायार्थलघुबोधिनी	-	गोवर्धन रंगाचार्य
17. पदकृत्य	-	चन्द्रजसिंह (बुध सिंह)
18. बालप्रबोधिनी	-	रामनारायण
19. भाष्यवृत्ति	-	मेरुशास्त्री
20. तर्कचन्द्रिका या प्रभा	-	वैद्यनाथ गाडगिल
21. हनुमती	-	व्यासपुत्र हनुमान्
22. भास्करोदया	-	लक्ष्मी नृसिंह
23. तर्कसंग्रह टिप्पणी	-	पट्टाभिराम

तर्कसंग्रह का मङ्गलाचरण

निधाय हृदि विश्वेशं विधाय गुरुवन्दनम्।
बालानां सुखबोधाय क्रियते तर्कसंग्रहः॥

- विश्व के स्वामी अर्थात् भगवान् शिव को हृदय में रखकर तथा गुरु की वन्दना करके बालकों को सुखपूर्वक ज्ञान कराने के लिए मेरे अन्नम्भट्ट के द्वारा तर्कसंग्रह की रचना की जा रही है।
- 'ग्रन्थस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थम् यह मङ्गलाचरण किया गया।
- इसमें भगवान् शिव तथा गुरु की वन्दना होने से नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण के साथ-साथ वस्तुनिर्देश भी किया गया है।
- इस मङ्गलाचरण में चार प्रकार के अनुबन्धों का भी निर्देश किया गया है, क्योंकि 'सम्बन्धश्चाधिकारी च विषयश्च प्रयोजनम्। विनानुबन्धं ग्रन्थादौ मङ्गलं नैव शस्यते।।

तर्कसंग्रह के अनुबन्ध चतुष्टय

(1) **अधिकारी-** बाल अर्थात् जिसने न्यायशास्त्र का अध्ययन नहीं किया है
(2) **विषय-** तर्क अर्थात सप्तपदार्थों का संक्षिप्त स्वरूपकथन
(3) **सम्बन्ध-** प्रतिपाद्य प्रतिपादकभाव अर्थात् प्रतिपाद्य पदार्थ तथा प्रतिपादक ग्रन्थ तर्कसंग्रह।
(4) **प्रयोजन-** सुखबोधाय अर्थात् सफलतापूर्वक ज्ञान की प्राप्ति

वैशेषिक दर्शन के सात पदार्थ

सप्त पदार्थ- द्रव्य-गुण- कर्म-सामान्य -विशेष- समवाय- अभावाः सप्त पदार्थाः पद+ अर्थः = पदार्थः। पदस्य अर्थः = पदार्थः। इसप्रकार कोई भी इन्द्रियग्राह्य विषय जिसे कोई नाम दिया जा सके पदार्थ कहलाता है।

- पदार्थ से अभिप्राय है- न्यायवैशेषिक दर्शन द्वारा स्वीकृत संसार के मूलभूत घटक जिनके आधार पर समस्त संसार के स्वरूप एवं स्वभाव की व्याख्या की जा सकती है।
- इसप्रकार दार्शनिक परम्परा में अद्वैतवेदान्त एकत्ववादी है तो सांख्य द्वैतवादी तो न्यायवैशेषिक सात मूल तत्त्वों को मानने के कारण बहुत्ववादी।
- अन्नम्भट्ट ने तर्कसंग्रह दीपिका टीका में पदार्थ का लक्षण दिया है पदस्यार्थः पदार्थः इति व्युत्पत्त्या अभिधेयत्वं पदार्थसामान्यलक्षणम् यहाँ 'अभिधेय' से तात्पर्य है - जिसका नाम दिया सके। संसार में ऐसी कोई वस्तु या पद नहीं है जिसका कोई नाम न दिया जा सके।
- शिवादित्य 'सप्तपदार्थी ' नामक ग्रन्थ में कहते हैं- ''प्रमितिविषयाः पदार्थाः '' अर्थात् जो कुछ भी ज्ञान का विषय हो सकता है, वह पदार्थ है।

तर्कसंग्रह में अन्नम्भट्ट ने सात पदार्थ बतायें है-

1. द्रव्य (Substance) 2. गुण (Quality) 3. कर्म (Action)
4. सामान्य (Universal) 5. विशेष (Particularity)
6. समवाय (Inherence) 7. अभाव (Non-existence)

- महर्षि कणाद एवं वैशेषिकसूत्रों के भाष्यकार प्रशस्तपाद ने प्रारम्भ में वैशेषिक दर्शन के छः पदार्थों का उल्लेख किया है।
- बाद में शिवादित्य, श्रीधर, उदयनाचार्य, व्योमशिव, अन्नम्भट्ट आदि परवर्ती वैशेषिकाचार्यों ने एक सातवें पदार्थ अभाव को भी जोड़ा।
- वैशेषिकदर्शन के समानतन्त्र न्यायदर्शन में तार्किक प्रक्रिया की दृष्टि से 16 पदार्थ बताये गये हैं। यथा- प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति तथा निग्रहस्थान। न्यायदर्शन के इन सोलहों पदार्थों को वैशेषिक के सात पदार्थों में अन्तर्भूत माना जाता है।

वैशेषिक दर्शन का प्रथम पदार्थ- द्रव्य

- **द्रव्य -** तर्कसंग्रह में द्रव्य का कोई लक्षण नहीं किया गया है किन्तु अन्नम्भट्ट ने तर्कसंग्रह की दीपिका टीका में द्रव्य का लक्षण करते हैं- ''**द्रव्यत्वजातिमत्त्वं गुणवत्त्वं वा द्रव्यसामान्यलक्षणम्**'' द्रव्य, द्रव्यत्वजाति से युक्त तथा गुणवान् होता है।
- तर्कसंग्रह की 'पदकृत्य' टीका में द्रव्य को 'कार्यमात्र समवायिकारण' कहा गया है- ''**द्रव्यत्वं जातिमत्त्वं समवायिकारणत्वं वा द्रव्यसामान्यलक्षणम्**''
- वैशेषिक सूत्र में महर्षि कणाद ने द्रव्य को क्रिया गुण से युक्त एवं समवायिकारण कहा है।

''**क्रियागुणवत्समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्**'' (वैशेषिकसूत्र- 1.1.15)

- इसप्रकार द्रव्य की कुल चार परिभाषायें की जा सकती हैं- **1. क्रियावद् द्रव्यम्** - अर्थात् द्रव्य कर्मों का आश्रय है। **2. गुणवद् द्रव्यम्** - अर्थात् गुण का आश्रय द्रव्य है। **3. द्रव्यत्वजातिमत्त्वं द्रव्यम्**-अर्थात् द्रव्यत्व जाति से युक्त द्रव्य है। **4. समवायिकारणं द्रव्यम्** - अर्थात् द्रव्य समवायिकारण है।
- दर्शनाचार्यों की दृष्टि में प्रथम तीन लक्षण सदोष तथा अन्तिम निर्दुष्ट लक्षण है।
- केवल द्रव्य ही समवायिकारण होता है, अन्य पदार्थ नहीं।
- सामान्यतः गुण एवं कर्म का आश्रय द्रव्य माना जाता है।

वैशेषिक दर्शन के नौ द्रव्य

- ''**तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्ततेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव**'' उन सात पदार्थों में जो प्रथम पदार्थ द्रव्य है, वे नौ ही होते हैं- 1.पृथिवी 2. अप् (जल) 3. तेज 4. वायु 5. आकाश 6. काल 7. दिक् (दिशा) 8. आत्मा 9. मन।
- इन गुणों में प्रथम पाँच गुण भौतिक पदार्थ हैं। दिक् एवं काल अर्धभौतिक द्रव्य हैं। आत्मा और मन नितान्त अभौतिक पदार्थ हैं।
- सभी नौ द्रव्यों में पृथिवी, अप्, तेज, वायु और मन ये ऐसे द्रव्य है जिनमें गुण और क्रिया दोनों रहते हैं, शेष चार द्रव्य केवल गुणवान् हैं।
- प्रभाकर मीमांसक भी वैशेषिक की भाँति इन्हीं नौ द्रव्यों को मानते हैं।
- कुमारिलभट्ट ने द्रव्यों की संख्या 11 मानी है, इसी क्रम में कुमारिलभट्ट ने 'तम' नामक दशम द्रव्य की कल्पना की।
- वैशेषिक दर्शन का मुख्य लक्ष्य बाह्यार्थवाद की स्थापना है। इसीलिए बाह्य जगत् के पदार्थों में सर्वप्रथम द्रव्य को मानना आवश्यक है।

नौ द्रव्यों में प्रथम द्रव्य- पृथिवी

- (i) **पृथिवी** ''गन्धवती पृथिवी '' गन्धवती पृथिवी है

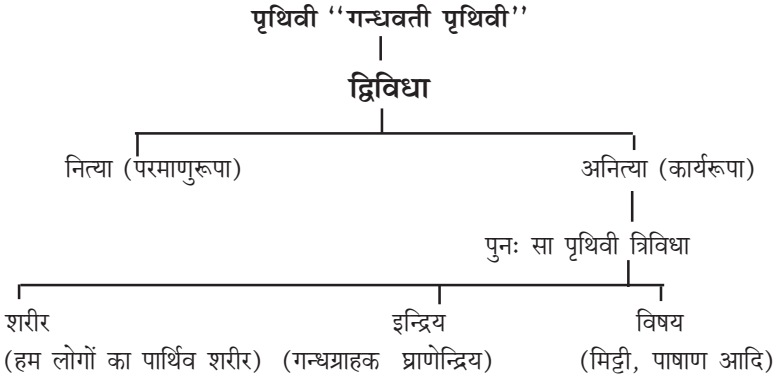

पृथिवी द्रव्य के विषय में कुछ स्मरणीय तथ्य-

- गन्ध पृथिवी का असाधारण धर्म है।
- गन्ध पृथिवी के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं प्राप्त होता।
- अन्य द्रव्यों में गन्ध- प्रतीति औपाधिक होती है।

नौ द्रव्यों में परिगणित द्वितीय द्रव्य-अप् (जल)

(ii) **अप् (जल) ''शीतस्पर्शवत्य आपः''**

शीत स्पर्श से युक्त जल है।

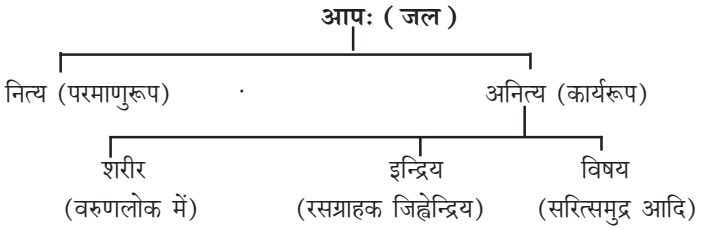

नौ द्रव्यों में परिगणित तृतीय द्रव्य - तेज

(ii) **तेज- उष्णस्पर्शवत्तेजः**

उष्ण (गर्म) स्पर्श वाला तेज है।

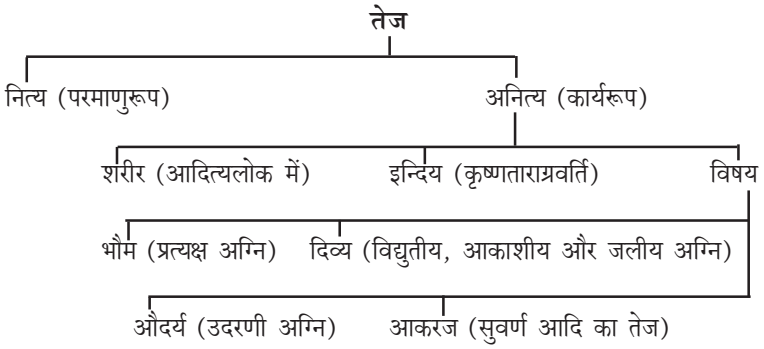

(iv) **नौ द्रव्यों में परिगणित चतुर्थ द्रव्य - वायु**

वायु- 'रूपरहितस्पर्शवान् वायुः'

रूप से रहित और स्पर्शयुक्त वायु है।

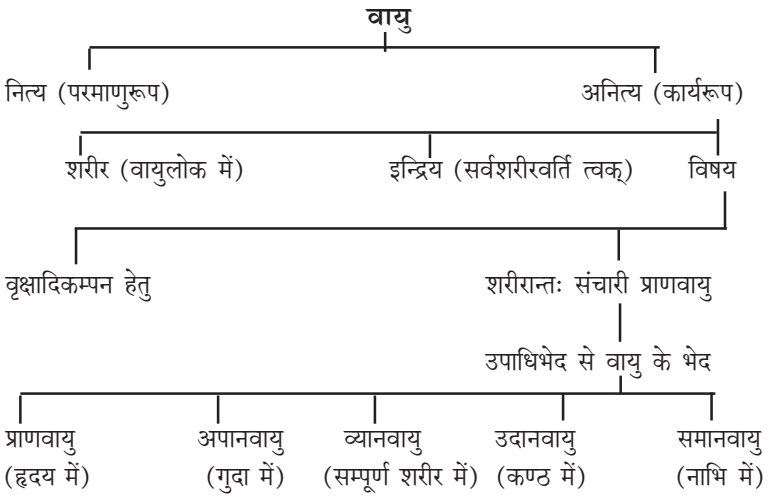

(v) नौ द्रव्यों में परिगणित पञ्चम द्रव्य- आकाश

आकाश-शब्दगुणकमाकाशम्- शब्द गुण से युक्त आकाश है। और वह विभु , नित्य और एक है।

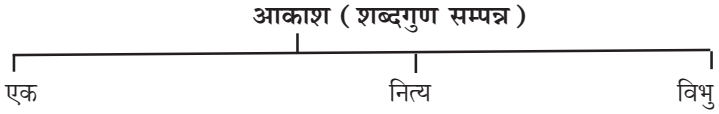

- शब्द केवल आकाश का ही गुण है, अन्य किसी पदार्थ का नहीं, क्योंकि रूप, रस आदि तो अन्य पदार्थों में भी रहते हैं, किन्तु शब्द आकाश के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं रहता है।
- आकाश का समस्त मूर्त पदार्थों से सम्बन्ध होने के कारण यह विभु है।
- आकाश का कभी विनाश न होने से यह नित्य है।
- आकाश की संख्या केवल एक मानी गयी है, इससे अधिक अथवा कम नहीं।
- सांख्यदर्शन में आकाश को शब्दतन्मात्रा से उत्पन्न महाभूत की संज्ञा प्रदान की गयी है।
- भाट्टमीमांसक शब्द और आकाश दोनों को स्वतन्त्र द्रव्य मानते हुए आकाश को प्रत्यक्ष मानते हैं, जबकि वैशेषिक इसे अनुमेय कहते हैं।
- वेदान्त ने आकाश को ब्रह्म स्वरूप माना है।
- जैनदर्शन का मत है कि संसार के सभी प्राणियों धर्म, अधर्म, काल, द्रव्य एवं समस्त पुद्गलों को स्थान देने वाला, आकाश वस्तुतः द्रव्य की श्रेणी में आता है।
- महर्षि कणाद की मान्यता है कि शब्द केवल आकाश का गुण है, क्योंकि वह अन्य किसी द्रव्य का गुण हो ही नहीं सकता है।

(vi) नौ द्रव्यों में परिगणित छठवाँ द्रव्य-काल

- **काल-** अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः
- अतीतादि व्यवहार का हेतु काल है, वह भी विभु नित्य और एक है।

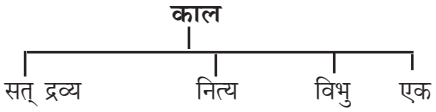

- उत्पत्ति स्थिति विनाश का हेतु उपाधित्रय से युक्त

काल द्रव्य के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य

- तर्कसंग्रह की दीपिका टीका में अन्नम्भट्ट ने काल को सबका आधार और सभी कार्यों के प्रति निमित्तकारण माना है- **''सर्वाधारः कालः सर्वकार्यनिमित्तकारणञ्च''**
- काल के विषय में विश्वनाथ कहते हैं कि 'समस्त जन्य वस्तुओं का जनक और सम्पूर्ण विश्व का आश्रय ही काल है।'
- शैव शाक्त और आगम 'काल' को ईश्वर की सम्पृक्त शक्ति कहकर परिभाषित करते हैं।
- न्यायदर्शन काल की अतीत और अनागत सत्ता को मान्यता प्रदान करता है, वर्तमान को नहीं।

(vii) नौ द्रव्यों में परिगणित सातवाँ द्रव्य-दिक्

- **दिक् (दिशा)- 'प्राच्यादिव्यवहारहेतुर्दिक्'**

प्राची आदि व्यवहार का कारण ही .दिक् है और वह एक, सर्वव्यापक एवं नित्य है।

दिक् के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य-

- दिशा को अन्नम्भट्ट ने एक, सर्वव्यापक एवं नित्य कहा है जबकि प्रशस्तपाद दिक् के दस औपाधिक भेदों का विवरण इस प्रकार देते हैं-

	दिशा	अपरनाम	देवता
1.	पूर्व दिशा	माहेन्द्री	इन्द्र
2.	पश्चिम दिशा	वारुणी	वरुण
3.	उत्तर दिशा	कौबेरी	कुबेर
4.	दक्षिण दिशा	याम्या	यम
5.	उत्तर-पूर्व का कोण	ऐशानी	ईशान
6.	उत्तर- पश्चिम का कोण	वायव्या	वायु
7.	दक्षिण-पश्चिम का कोण	नैर्ऋति	नैर्ऋत
8.	दक्षिण-पूर्व दिशा का कोण	आग्नेयी	अग्नि
9.	ऊर्ध्व (ऊपर) दिशा	ब्राह्मी	ब्रह्म
10.	नीचे की दिशा	नागी	नाग

- उदयाचल के तरफ की दिशा **प्राची अर्थात् पूरब** कहलाती है, अस्ताचल के निकट की ओर **प्रतीची अर्थात् पश्चिम** दिशा है। मेरु पर्वत की ओर **उदीची** अर्थात् **उत्तर** दिशा है तथा उसके विपरीत दिशा में **अवाची अर्थात् दक्षिण** दिशा कहलाती है।
- औपाधिक दस दिशाओं के अलावा पद्मनाभ मिश्र एवं शिवादित्य आदि वैशेषिक दर्शन के कुछ आचार्यों ने प्राची और अवाची दिशाओं के मध्य **रौडी** नामक ग्यारहवीं दिशा को भी मान्यता प्रदान की है जिसके देवता **रुद्र** माने गये हैं।
- वैशेषिक दर्शन **दिक् को अनुमान का विषय** स्वीकार करता है।
- अन्नम्भट्ट अपनी दीपिका टीका में कहते हैं कि-विशिष्ट समय एवं किसी विशेष प्रदेश में उत्पन्न होने के कारण प्रत्येक कार्य के प्रति दिक् और काल निमित्तकारण होता है।
- **'गुणाश्रयो द्रव्यम्'** इस सिद्धान्त के अनुसार दिशा में भी काल के समान ही संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, और विभाग-इन पाँच गुणों की परिकल्पना की गयी है।
- तर्कसंग्रह में आकाश, काल और दिक्- इन तीनों द्रव्यों को एक, सर्वव्यापक और नित्य बताया गया है, किन्तु इनमें कुछ भेद भी हैं।
- शब्द आकाश का विशेष गुण है जबकि दिक् का कोई विशेष गुण नहीं है।
- आकाश शब्द का समवायिकारण है जबकि दिक् किसी का समवायिकारण नहीं है।
- आकाश का सम्बन्ध भूतों से होता है, जबकि दिक् का सम्बन्ध मन से।
- आकाश की स्वतन्त्र सत्ता होती है, जबकि दिक् प्रमाता के अनुभव पर आधारित है।

(viii) **नौ द्रव्यों में परिगणित आठवाँ द्रव्य- आत्मा**

आत्मा- ''ज्ञानाधिकरणमात्मा'' ज्ञान का अधिकरण आत्मा है।

जीवात्मा और परमात्मा भेद से वह दो प्रकार का होता है।

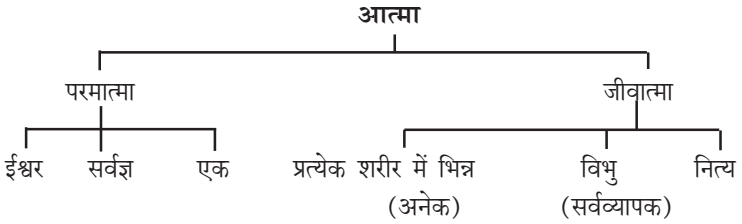

आत्मा के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य

- प्रत्येक शरीर के भिन्न होने के कारण आत्मा को अनेक मानना भी उचित है, कभी विनष्ट न होने के कारण इसे नित्य भी कहा गया है। सर्वत्र विद्यमान होने के कारण इस आत्मा को सर्वव्यापक भी कहा गया है।
- परमात्मा नित्य ज्ञान का अधिकरण होता है, जबकि जीवात्मा में अनित्य ज्ञान विद्यमान रहता है।

- जीवात्मा शरीर में विद्यमान होने से शरीर को धारण करने वाला है, जबकि परमात्मा शरीर के विना भी स्थित रहता है।
- जीवात्माओं में कुछ मुक्त एवं बद्ध होते हैं, जबकि परमात्मा नित्य मुक्त होता है।
- जीवात्मा में अधर्म, मिथ्याज्ञान और प्रमाद आदि विद्यमान रहते हैं, जबकि परमात्मा में अणिमा आदि ऐश्वर्य रहते हैं।
- चार्वाक को छोड़कर सम्पूर्ण भारतीय दर्शन परम्परा आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करती है।

(xi) नौ द्रव्यों में परिगणित अन्तिम द्रव्य-मन

मन- सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः

सुख आदि की उपलब्धि का साधन इन्द्रिय ही मन है और वह प्रत्येक आत्मा के साथ नियम से रहने के कारण अनन्त, परमाणुरूप एवं नित्य है।

मन द्रव्य के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य

- वैशेषिकदर्शन की नौ द्रव्य परम्परा में मन की **अन्तिम द्रव्य** के रूप में गणना की गयी है। इसे **अन्तरिन्द्रिय** भी कहते हैं।
- विद्वानों ने मन का निर्वचन **''मन्यते ज्ञायते अनेन इति मनः''** किया है।
- दीपिका टीका में अन्नम्भट्ट ने कहा है- 'स्पर्शरहितत्वे सति क्रियात्त्वम्' अर्थात् जो स्पर्शरहित रहते हुए भी क्रियावान् रहता है, उसे 'मन' कहते हैं।
- अन्नम्भट्ट प्रत्येक शरीर के साथ आत्मा की भिन्न स्थिति स्वीकार करते हैं मन को भी प्रत्येक आत्मा के साथ नियतरूप से अलग-अलग स्वीकार करते हैं।
- अन्नम्भट्ट आत्मा और मन दोनों को नित्य मानते हुए भी इसके संयोग को नित्य नहीं मानते हैं।
- मन के परमाणुरूप होने के कारण ही उसकी नित्यता सम्भव होती है।

2. वैशेषिक दर्शन का द्वितीय पदार्थ -गुण

- **गुण का लक्षण** -वैशेषिक सूत्र में गुण का लक्षण इसप्रकार है-
  ''द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम् ''
  अर्थात् - जो द्रव्य में आश्रित हो, गुणरहित हो और संयोग तथा विभाग के प्रति स्वतन्त्रकारण न हो वह गुण है।
- तर्कसंग्रह की दीपिका टीका में अन्नम्भट्ट गुण की दो परिभाषायें करते हैं-
  (क) **'गुणत्वजातिमान्'** अर्थात् गुणत्वजाति से जो युक्त है वह गुण है।
  (ख) **'द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवान्'** अर्थात् द्रव्य और कर्म से भिन्न होते हुए जो सामान्य (गुणत्व जाति) का आश्रय हो, वह गुण है।

- वैशेषिक के अनुसार 'सामान्य' केवल तीन पदार्थों में रहता है- द्रव्य, गुण तथा कर्म।
- कणाद ने सत्रह प्रकार के गुणों का उल्लेख किया है; बाद में प्रशस्तपाद ने इसमें सात और गुणों को जोड़कर इसकी संख्या 24 तक पहुँचायी। ये हैं- गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म तथा शब्द।

गुणों का विभाजन

- प्रशस्तपाद ने चौबीस गुणों का वर्गीकरण मूर्त, अमूर्त, एवं मूर्तामूर्तगुण (उभयगुण) के रूप में किया है।
- **मूर्तगुण-** रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व द्रवत्व, स्नेह, वेग एवं स्थितिस्थापक (संस्कार)।
- **अमूर्तगुण-** बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म- अधर्म, शब्द, भावना (संस्कार)।
- **मूर्तामूर्त गुण (उभयगुण)-** संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग एवं विभाग।

गुणों का दूसरे प्रकार का विभाजन

- **विशेष एवं सामान्य गुण -** विशेष से तात्पर्य उन गुणों से है , जो एक समय में एक ही द्रव्य में रहते हैं इसलिए विशेष गुण द्रव्यों के भेदक गुण होते हैं।
- सामान्य गुण वे हैं जो एक साथ दो या उससे अधिक द्रव्यों में रहते हैं।
- **विशेषगुण-** रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, स्नेह द्रवत्व (सांसिद्धिक), बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, शब्द, भावना (संस्कार)
- **सामान्य गुण-** संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व (नैमित्तिक) वेग (संस्कार)

गुणों का अन्य प्रकार का विभाजन-

- **द्वीन्द्रियग्राह्यगुण-** संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, स्नेह, तथा, वेग (स्थितिस्थापक)।
- **बाह्येन्द्रिय ग्राह्यगुण-** रूप,रस, गन्ध, स्पर्श, तथा शब्द
- **अतीन्द्रिय गुण-** गुरुत्व, धर्म, अधर्म, तथा भावना।
- **अन्तरिन्द्रिय गुण-** बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, तथा प्रयत्न।

गुण पदार्थ की विशेषतायें

- गुण 'गुणत्व' जाति से युक्त होते हैं।
- गुण सदा द्रव्यों में ही आश्रित होते हैं।
- गुण में गुण नहीं रहते।
- गुण में क्रिया भी नहीं पायी जाती।
- गुण संयोग और विभाग का साक्षात् कारण नहीं है।
- गुण अपने कार्य का असमवायिकारण है।

- गुण एक ऐसा धर्म है जो द्रव्य में समवाय सम्बन्ध से रहता है।

अन्य शास्त्रों की दृष्टि में गुण

- लौकिक व्यवहार में सामान्य रूप से शील, विनम्रता, दयालुता, परोपकारिता आदि को गुण कहा जाता है।
- व्याकरणशास्त्र में **'अदेङ्गुणः'** से ''अ,ए, ओ'' को गुण कहा जाता है।
- सांख्यदर्शन में प्रकृति के घटकतत्व **सत्त्व, रजस् और तमस्** को गुण कहा जाता है।
- काव्यशास्त्र में **ओज, प्रसाद एवं माधुर्य** को गुण कहा गया है।
- राजनीतिशास्त्र में सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव एवं संश्रय इन छहों को **नीतिविषयक गुण** कहा गया है।
- **गुण की परिभाषा वैशेषिक दर्शन के अनुसार-** गुणत्व जाति से युक्त, द्रव्य एवं कर्म से अलग होते हुए, सामान्य धर्म से युक्त पदार्थ ही गुण है। **''गुणत्वजातिमान् द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवान्''** (दीपिका टीका)

वैशेषिकदर्शन के चौबीस गुणों में परिगणित प्रथम गुण-रूप

- **1. रूप- ''चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रूपम्''**

  नेत्र मात्र से ग्रहण किया जाने वाला गुण रूप है।

  रूप के प्रकार - रूप गुण के सात प्रकार हैं-

  शुक्ल-नील-पीत- रक्त-हरित-कपिश-चित्रभेदात् सप्तविधम्'

  रूप गुण के सात प्रकार

  - (1) शुक्ल (श्वेत)
  - (2) नील (नीला)
  - (3) पीत (पीला)
  - (4) रक्त (लाल)
  - (5) हरित (हरा)
  - (6) कपिश (भूरा)
  - (7) चित्र (चितकबरा)

- **रूप गुण किन द्रव्यों में रहता है -** ''पृथिवी-जल-तेज-वृत्तिः''

  यह रूप गुण पृथिवी, जल तथा तेज में रहता है।''
- पृथिवी में सातों प्रकार के रूप रहते हैं - 'पृथिव्यां सप्तविधम्'
- जल में अभास्वर = (नहीं चमकने वाला) शुक्ल रहता है। **'अभास्वरशुक्लं जले'**
- तेज द्रव्य में भास्वर = (चमकने वाला) शुक्ल होता है। **''भास्वरशुक्लं तेजसि''**

रूप गुण की द्रव्यों में स्थिति

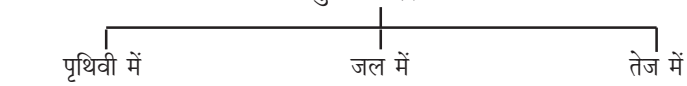

रूप गुण की विशेषतायें -

(1) यह रूप नामक गुण पृथिवी जल एवं तेज में रहता है किसी अन्य द्रव्य में नहीं।
(2) इसका ज्ञान केवल चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा होता है। अतः यह चक्षु का सहकारी है।
(3) रूप गुण पृथिवी, जल और तेज के प्रत्यक्ष में कारण होता है।
(4) पार्थिव वस्तुओं का रूप पाकज होता है, जल और तेज में रूप अपाकज होता है।
(5) पाकज होने के कारण पार्थिव रूप अनित्य होता है, जल और तेज के परमाणुओं का रूप अपाकज होने के कारण अनित्य होता है।
(6) रूप गुण द्रव्य में व्याप्यवृत्ति होकर रहता है।

2. द्वितीय गुण - रस

- **रस** - ''रसनाग्राह्यो गुणो रसः'' रसनेन्द्रिय के द्वारा ग्रहण किया जाने वाला गुण रस है।
- **रस के प्रकार-** 'रस' नामक गुण छह प्रकार का होता है।
  ''मधुराम्ललवणकटुकषायतिक्तभेदात् षड्विधः''

रस (छह प्रकार)

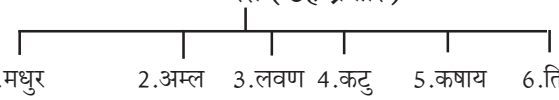

- **रस की द्रव्यों में स्थिति -** यह रस नामक गुण पृथिवी तथा जल नामक द्रव्यों में रहता है।
- पृथिवी में छः प्रकार के रस होते हैं, जल में केवल मधुर रस ही होता है ''पृथिवीजलवृत्तिः। तत्र पृथिव्यां षड्विधः। जले मधुर एव''

रस की स्थिति

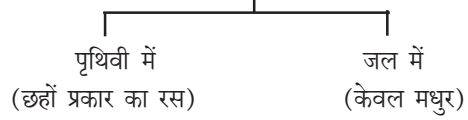

रस नामक गुण की विशेषतायें

(1) यह 'रस' नामक विशेष गुण पृथिवी एवं जल में रहता है, किसी अन्य द्रव्य में नहीं।
(2) इसका ज्ञान केवल रसना के द्वारा होता है।
(3) यह रसना का सहकारी है।
(4) यह 'रस' द्रव्य में व्याप्यवृत्ति होकर रहता है।

(5) यह रस गुण स्वप्रत्यक्ष में कारण होता है।
(6) जल का रस मधुर होता है।
(7) रस केवल पार्थिव वस्तुओं में पाया जाता है।
(8) पार्थिव वस्तुओं का रस पाकज और जल का रस अपाकज होता है।
(9) केवल जल परमाणु का रस नित्य है, शेष अनित्य।

3. तृतीय गुण- गन्ध

गन्ध - घ्राणग्राह्यो गुणो गन्धः
घ्राणेन्द्रिय (नासिका) से ग्रहण किया जाने वाला गुण गन्ध है।
गन्ध गुण के प्रकार - यह गन्ध गुण दो प्रकार का है-
(1) सुरभि (सुगन्ध) (2) असुरभि (दुर्गन्ध) ''स च द्विविधः सुरभिरसुरभिश्च।''

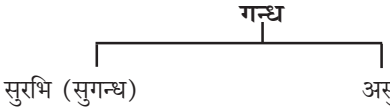

गन्ध गुण की स्थिति- यह गन्ध गुण केवल पृथिवी में ही रहता है- ''पृथिवीमात्रवृत्तिः''
गन्ध गुण की विशेषतायें- (1) यह गन्ध नामक विशेष गुण केवल पृथिवी में ही रहता है किसी अन्य द्रव्य में नहीं।
(2) इसका ज्ञान केवल घ्राणेन्द्रिय के द्वारा होता है।
(3) यह घ्राणेन्द्रिय का सहकारी है।
(4) यह गन्ध गुण पार्थिव द्रव्यों में व्याप्यवृत्ति होकर रहता है।
(5) यह स्वप्रत्यक्ष में कारण होता है।
(6) इसके दो भेद है- सुरभि (खुशबू) एवं असुरभि (बदबू)
(7) पाकज होने के कारण यह अनित्य है।

4. स्पर्शः- 'त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यो गुणः स्पर्शः'
त्वगिन्द्रिय मात्र (त्वचा) से ग्रहण किया जाने वाला गुण स्पर्श है।

स्पर्श गुण के भेद- वह तीन प्रकार का है-
(1) शीत (ठण्डा) (2) उष्ण (गर्म) (3) अनुष्णातीत (न गर्म न ठण्डा)
'स च त्रिविधः- शीत-उष्ण-अनुष्णातीतभेदात्'

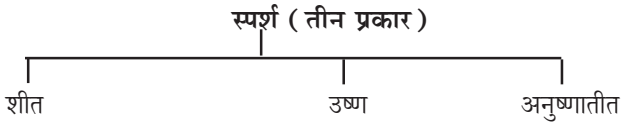

- **स्पर्श की स्थिति -** पृथिवी, जल, तेज,वायु,में यह स्पर्श गुण रहता है- 'पृथिव्यप्तेजोवायुवृत्तिः'

- जल में शीत स्पर्श, तेज में उष्णस्पर्श तथा पृथिवी एवं वायु में अनुष्णाशीत स्पर्श होता है।

स्पर्श गुण की द्रव्यों में स्थिति

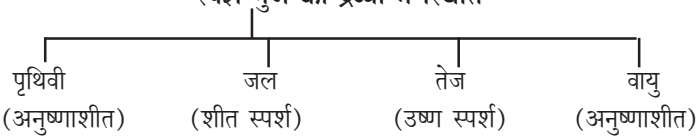

- पृथिवी का स्पर्श पाकज और वायु का स्पर्श अपाकज होता है।
- जल,तेज और वायु के परमाणुओं का स्पर्श नित्य होता है पार्थिव परमाणुओं का स्पर्श पाकज होने के कारण अनित्य होता है।
- पृथिवी में रूप,रस,गन्ध और स्पर्श- ये चारों गुण पाक द्वारा उत्पन्न होते हैं, अतः अनित्य हैं। ये 'पाकज' कहलाते हैं।
- पृथिवी से भिन्न द्रव्यों में ये सभी गुण 'अपाकज' हैं और नित्य तथा अनित्य दोनों प्रकार के होते हैं।
- ये नित्यपदार्थों में नित्य तथा अनित्य पदार्थों में अनित्य हैं।
- न्यायदर्शन इस क्रिया को **'पिठरपाक'** तथा वैशेषिक दर्शन इसे **'पीलुपाक'** कहता है। 'पीलु' पद का अर्थ है- परमाणु।
- इस दृष्टि से 'पीलुपाक' का अर्थ हुआ- 'परमाणुओं का पाक।' 'पिठर' का अर्थ है- पिण्ड। इसलिए पाकरूप यह क्रिया सम्पूर्ण घटरूप पिण्ड में होती है, उसके परमाणुओं में नहीं।

5. संख्या- 'एकत्वादिव्यवहारहेतुः सङ्ख्या'

- एक, दो, तीन आदि व्यवहार (प्रयोग) के कारण को संख्या कहते हैं।

  संख्या गुण की द्रव्यों में स्थिति- संख्या नामक गुण सभी नौ द्रव्यों में रहता है। **'सा नवद्रव्यवृत्तिः'**
- एक से लेकर परार्ध तक इसकी सीमा है।
- एकत्व नित्य और अनित्य दोनों प्रकार का होता है।
- वह संख्या नित्य द्रव्य में नित्य तथा अनित्य द्रव्य में अनित्य है, जबकि द्वित्वादि संख्या सर्वत्र ही अनित्य है।

6. परिमाणम्- 'मानव्यवहाराऽसाधारणकारणं परिमाणम्'

मान (माप) व्यवहार के असाधारण कारण को परिमाण कहते हैं।

परिमाण के प्रकार - यह चार प्रकार का है-

(1) अणु (2) महत् (3) दीर्घ (4) ह्रस्व

- अणु परिमाण को ही 'परिमाण्डल्य' भी कहा जाता है।

परिमाण गुण की द्रव्यों में स्थिति- यह परिमाण नामक गुण सभी नौ द्रव्यों में रहता है। 'नवद्रव्यवृत्तिः'

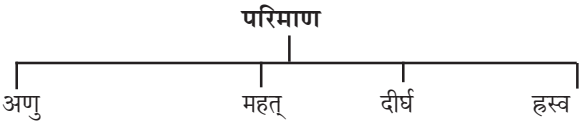

7. **पृथक्त्व-** 'पृथग्व्यवहारकारणं पृथक्त्वम्'- पृथक् (अलग) व्यवहार के कारण को पृथक्त्व कहते हैं।

पृथक्त्व गुण की द्रव्यों में स्थिति- यह पृथक्त्व गुण सब द्रव्यों में रहता है- 'सर्वद्रव्यवृत्तिः'

8. **संयोगः-** 'संयुक्तव्यवहारहेतुः संयोगः' संयुक्त व्यवहार का कारण ही संयोग नामक गुण है।

संयोग नामक गुण की द्रव्यों में स्थिति- यह सभी द्रव्यों में पाया जाता है। 'सर्वद्रव्यवृत्तिः'

9. **विभागः-** 'संयोगनाशको गुणो विभागः' संयोग का नाशक गुण विभाग है

विभाग गुण की स्थिति- वह सारे द्रव्यों में रहता है- 'सर्वद्रव्यवृत्तिः'

10,11. **परत्व एवं अपरत्व-** 'पराऽपरव्यवहाराऽसाधारणकारणे परत्वाऽपरत्वे' पर (दूर) तथा अपर (निकट) इस व्यवहार के असाधारण कारण को क्रमशः परत्व एवं अपरत्व कहते हैं।

परत्व एवं अपरत्व गुण के भेद- वे दो प्रकार के हैं- (1) दिक्कृत (2) कालकृत

- दूरस्थ में दिक्कृत परत्व तथा समीपस्थ में दिक्कृत अपरत्व है।
- इसीप्रकार ज्येष्ठ में कालकृत परत्व तथा कनिष्ठ में कालकृत अपरत्व है।

परत्व एवं अपरत्व गुणों की द्रव्यों में स्थिति- इन दोनों गुणों की स्थिति पृथिवी,जल,तेज,वायु तथा मन में विद्यमान रहती है।

12. **गुरुत्वम्-** 'आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वम्' प्रथम पतन का असमवायिकारण गुरुत्व है।

गुरुत्व गुण की द्रव्यों में स्थिति-

- यह पृथिवी तथा जल में रहता है- 'पृथिवीजलवृत्तिः'
- विज्ञान में न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त वैशेषिक के इसी गुरुत्व गुण का परिष्कृत रूप है।

13. **द्रवत्वम् –** 'आद्यस्यन्दनासमवायिकारणं द्रवत्वम्' प्रथम स्यन्दन (बहना) का असमवायिकारण ही द्रवत्व है।

- **द्रवत्व गुण के प्रकार-** द्रवत्व गुण दो प्रकार का होता है- (1) सांसिद्धिक

(2)नैमित्तिक

द्रवत्व गुण की द्रव्यों में स्थिति- द्रवत्व गुण, पृथिवी, जल और तेज में रहता है। 'पृथिव्यप्तेजोवृत्तिः'

- सांसिद्धिक द्रवत्व जल में तथा नैमित्तिक द्रवत्व पृथिवी एवं तेज में होता है।
- घी आदि पृथिवी में अग्नि के संयोग से द्रवत्व होता है।
- सुवर्ण आदि तेज में भी अग्नि के संयोग से द्रवत्व उत्पन्न होता है।

14. स्नेहः- 'चूर्णादिपिण्डीभावहेतुर्गुणः स्नेहः' चूर्णादि को पिण्ड बना देने वाले गुण को स्नेह कहते हैं।

स्नेह गुण की द्रव्यों में स्थिति- स्नेह गुण केवल जल में रहता है- 'जलमात्रवृत्तिः'

15. शब्दः- श्रोत्रग्राह्यो गुणः शब्दः श्रोत्रेन्द्रिय से ग्रहण किया जाने वाला गुण शब्द है-

शब्द गुण के प्रकार- शब्द गुण दो प्रकार का है- (1) ध्वन्यात्मक (2)वर्णात्मक

- भेरी आदि में ध्वन्यात्मक शब्द है। संस्कृतभाषादि रूप वर्णात्मक शब्द है।

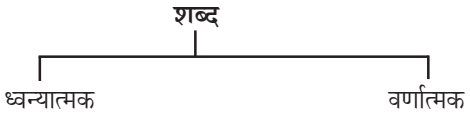

(भेरी, बाँसुरी आदि से उत्पन्न शब्द) (संस्कृत, पालि आदि भाषाओं के शब्द)

- **शब्द गुण की द्रव्यों में स्थिति-** यह शब्द गुण केवल आकाश में रहता है- 'आकाशमात्रवृत्तिः'
- **शब्द गुण के विषय में स्मरणीय बिन्दु-** वैशेषिकदर्शन मात्र में ही शब्द को गुण माना गया है; अन्यत्र न्याय, सांख्य, योग, वेदान्त तथा मीमांसा में शब्द को प्रमाण के रूप में ही माना गया है। केवल वैशेषिक दर्शन शब्द को प्रमाण नहीं मानता।
- कणाद ने इसको प्रमाण न मानने के पीछे यही तर्क दिया है कि शाब्दबोध से उत्पन्न ज्ञान अनुमान के ही अन्तर्गत आ जाता है।

16. बुद्धिः- 'सर्वव्यवहारहेतुर्गुणो बुद्धिर्ज्ञानम्' सब प्रकार के व्यवहार का हेतु बुद्धि या ज्ञान नामक गुण है।

- **बुद्धि गुण के प्रकार –** वह बुद्धि दो प्रकार की है- (1) स्मृति (2) अनुभव

बुद्धि गुण के विषय में स्मरणीय तथ्य-

बुद्धि आत्मा का विशेष गुण है। यह विषय मात्र के प्रत्यक्ष में कारण है। इसका समवायिकारण आत्मा है। इसका असमवायिकारण है आत्ममनःसंयोग। निमित्तकारण है त्वङ्मनःसंयोग। साधारणकारण है- काल, अदृष्ट, ईश्वरेच्छा, ईश्वरज्ञान और प्रयत्न। यह बुद्धि जीवात्मा में अनित्य और परमात्मा में नित्य होती है।

स्मृति-'संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः' संस्कारमात्र से उत्पन्न ज्ञान स्मृति है।

स्मृति दो प्रकार की होती है- (1) यथार्थस्मृति (2) अयथार्थस्मृति

(1) **यथार्थस्मृति-** प्रमाजन्या यथार्था-प्रमा से उत्पन्न होने वाली स्मृति यथार्थ है।

(2) **अयथार्थस्मृति-** अप्रमाजन्या अयथार्था- अप्रमा से उत्पन्न होने वाली स्मृति अयथार्थ है।

➢ **अनुभव- तद्भिन्नं ज्ञानमनुभवः** उस स्मृति से भिन्न ज्ञान अनुभव है।

➢ अनुभव के दो प्रकार हैं- (1)यथार्थ अनुभव (2) अयथार्थ अनुभव

(1) **यथार्थ अनुभव-** 'तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थः' जो वस्तु जिस रूप में हो, उसका उसी रूप में अनुभव यथार्थ है। जैसे- चाँदी में 'यह चाँदी है' ऐसा ज्ञान। (रजते इदं रजतम् इदं ज्ञानम्)

➢ यही यथार्थ अनुभव प्रमा (प्रामाणिक ज्ञान) कहलाता है।

➢ यथार्थानुभव के चार प्रकार - प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति तथा शाब्द।

➢ यथार्थानुभव के करण भी चार प्रकार के हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, तथा शब्द।

नोट- प्रमाणों का विवेचन यथावसर आगे किया जाएगा।

(2) **अयथार्थ अनुभव-** तदभाववति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थः
जो वस्तु जिस रूप में न हो, उसे उस रूप में समझना अयथार्थ है। जैसे- 'शुक्तौ इदं रजतम्' इति ज्ञानम्। (सीपी में यह रजत है, ऐसा ज्ञान)

➢ यही अयथार्थज्ञान अप्रमा (अप्रामाणिक ज्ञान) कहलाता है।

अयथार्थ अनुभव के प्रकार- अयथार्थ अनुभव तीन प्रकार का है- (1) संशय (2)विपर्यय (3)तर्क

(1) **संशय-** 'एकस्मिनि धर्मिणि विरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहि ज्ञानं संशयः'
एक धर्मी में विरोधी नाना धर्मों की विशिष्टता से सम्बद्ध ज्ञान संशय है। यथा- स्थाणुर्वा पुरुषो वा इति (यह स्थाणु है या पुरुष)

(2) **विपर्यय-** मिथ्याज्ञानं विपर्ययः मिथ्याज्ञान विपर्यय है।
यथा- शुक्तौ इदं रजतम् (सीपी में यह रजत है ऐसा ज्ञान)

(3) **तर्क**- 'व्याप्याऽऽरोपेण व्यापकारोपस्तर्कः' व्याप्य के आरोप से व्यापक का आरोप तर्क है। यथा- यदा वह्निर्न स्यात् तर्हि धूमोऽपि न स्यात्। (जब अग्नि नहीं होती तो धुआँ भी नहीं होता)

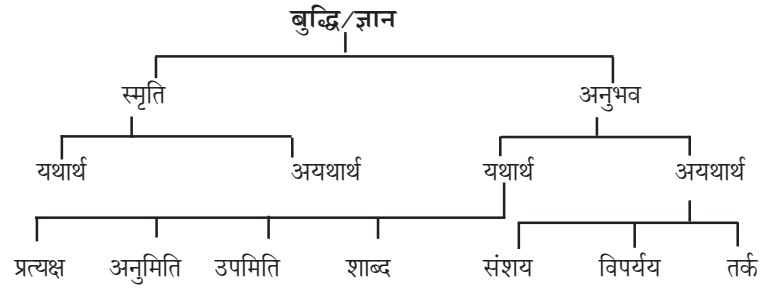

17. **सुख -** 'सर्वेषामनुकूलवेदनीयं सुखम्' - सबके अनुकूल प्रतीति सुख है।
18. **दुःख –** 'सर्वेषां प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम्' - सबके प्रतिकूल प्रतीति दुःख है।
19. **इच्छा-** 'इच्छा कामः' - काम इच्छा है।
20. **द्वेष-** 'क्रोधो द्वेषः' – क्रोध द्वेष है।
21. **प्रयत्न –** 'कृतिः प्रयत्नः' – कृति प्रयत्न है।
22. **धर्म-** 'विहितकर्मजन्यो धर्मः' – विहित कर्मों से उत्पन्न धर्म है।
23. **अधर्म-** निषिद्धकर्मजन्यः तु अधर्मः-निषिद्ध कर्मों से उत्पन्न अधर्म है।

- बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म एवं अधर्म – ये आत्मा के आठ विशेष गुण हैं।
- बुद्धि इच्छा एवं प्रयत्न दो प्रकार के हैं – नित्य और अनित्य। नित्य ईश्वर के, अनित्य जीव के। शेष सुख, दुःख, द्वेष, धर्म, अधर्म ये पाँच विशेष गुण जीवमात्र में रहने के कारण अनित्य हैं।

24. **संस्कार –** संस्कार गुण तीन प्रकार के होते हैं- वेग, भावना तथा स्थितिस्थापक।
'संस्कारस्त्रिविधः वेगो भावना स्थितिस्थापकश्च'

(1) **वेग –** द्वितीयादिपतनासमवायिकारणं वेगः (पदकृत्य टीका) इसे पतन का असमवायिकारण भी कहा जाता है। वेग क्रिया का हेतु है। यह पृथिवी आदि चार द्रव्य (पृथिवी, जल, तेज, वायु) तथा मन में रहता है।

(2) **भावना –** अनुभवजन्या स्मृतिहेतुर्भावना
यह अनुभव से उत्पन्न होती है तथा स्मृति की हेतु है। यह मूलतः ज्ञान के पश्चात् उत्पन्न होने वाला गुण है, जो पूर्वगृहीत ज्ञान की स्मृति कराती है। यह केवल आत्मा में रहती है। 'आत्ममात्रवृत्तिः'

(3) **स्थितिस्थापक-** 'अन्यथाकृतस्य पुनस्तदवस्थाऽऽपादकः स्थितिस्थापकः' अन्यथा की हुई को पुनः उसी अवस्था में ला देने वाला स्थितिस्थापक है, यह कटादि पृथिवी में रहता है। यह वह शक्ति है जो पदार्थ को अपने पूर्वरूप में ले आती है।

वैशेषिकदर्शन का तृतीय पदार्थ

- **कर्म-** चलनात्मकं कर्म
चलनात्मक क्रिया को कर्म कहते हैं।
कर्म के पाँच प्रकार - उत्क्षेपण- अवक्षेपण- आकुञ्चन-प्रसारण-गमनानि पञ्च कर्माणि

1. **उत्क्षेपण-** ऊर्ध्वदेशसंयोगहेतुः उत्क्षेपणम्
ऊर्ध्वदेश में संयोग का हेतु ही उत्क्षेपण नामक कर्म है

- किसी वस्तु अथवा पदार्थ का ऊपर की ओर उछालना उत्क्षेपण कर्म है।
- जब हम गेंद को आकाश की ओर फेंकते हैं तो इस कर्म द्वारा गेंद का संयोग ऊपर के

प्रदेश से होता है। यही कर्म उत्क्षेपण कर्म है।

2. **अपक्षेपण-** अधोदेशसंयोगहेतुः अपक्षेपणम्

➢ अधोदेश में संयोग का कारण अपक्षेपण नामक कर्म है।
अर्थात् किसी वस्तु या पदार्थ को नीचे गिराना। जब हम किसी मकान की छत से गेंद को नीचे की ओर फेंकेगे तो इससे गेंद का नीचे के प्रदेश से संयोग होगा जो अपक्षेपण कर्म की श्रेणी में आएगा।

3. **आकुञ्चन-** 'शरीरसन्निकृष्टसंयोगहेतुः आकुञ्चनम्'

➢ अपने शरीर के सन्निकृष्ट देश में संयोग का हेतु आकुञ्चन है।

➢ जब कछुआ अपने अङ्गों को किसी डर के कारण अपने शरीर में सिकोड़ता है अथवा हवा से फूले हुए गुब्बारे से हवा निकालने पर जब वह सिकुड़ता है, अर्थात् जिसके द्वारा वस्तु के अवयव सामान्य अवस्था में एक-दूसरे के निकट आ जाते हैं। जैसे- हाथ-पैर मोड़ना आदि आकुञ्चन कार्य के अन्तर्गत आएगा।

➢ वक्रत्वसम्पादकं कर्म आकुञ्चनम् -(तर्कसंग्रहदीपिका)

4. **प्रसारण-** 'विप्रकृष्टसंयोगहेतुः प्रसारणम्'

➢ अपने शरीर से दूरवर्ती (विप्रकृष्ट) संयोग का कारण ही प्रसारण है।

➢ योग, व्यायाम आदि करते समय जब हम अपने हाथ पैर चारों ओर फैलाते हैं तो इस स्थिति में हमारे शरीर के अवयव एक दूसरे से दूर हो जाते है- यही प्रसारण कर्म है।

➢ 'ऋजुतासम्पादकं प्रसारणम्' - (तर्कसंग्रहदीपिका)

5. **गमन - 'अन्यत् सर्वं गमनम्'**

➢ उक्त चारों कर्मों के अतिरिक्त सारे कार्य 'गमन' के अन्तर्गत आते हैं। जैसे- चलना, भ्रमणकरना आदि।

➢ कर्म किन- किन द्रव्यों में रहता है- ये सभी पाँचों कर्म पृथिवी, जल,तेज, वायु तथा मन में विद्यमान रहते हैं- **''पृथिव्यादिचतुष्टयमनोमात्रवृत्तिः''**

पाँचों कर्मों का शाब्दिक अर्थ

1. **उत्क्षेपण-** ऊपर की ओर उछालना जैसे- गेंद को आकाश की ओर फेंकना।
2. **अवक्षेपण-** नीचे की ओर गिराना। जैसे- छत से नीचे की ओर गेंद फेंकना।
3. **आकुञ्चन-** सिकोड़ना- जैसे- कछुआ का अपने अङ्गों को सिकोड़ना।
4. **प्रसारण-** फैलाना- जैसे- हाथ -पैर फैलाना, वस्त्र फैलाना आदि।
5. **गमन-** चलना, भ्रमण करना- जैसे- चलना फिरना टहलना।

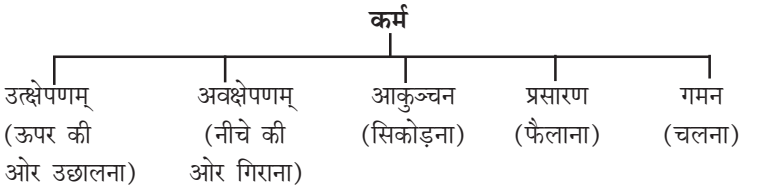

कर्म नामक पदार्थ के विषय में कुछ स्मरणीय तथ्य

तर्कसंग्रह की दीपिका टीका में अन्नम्भट्ट ने कर्म की दो परिभाषायें दी हैं-

कर्म - संयोगभिन्नत्वे सति संयोगासमवायिकारणं कर्म (तर्कसंग्रह दीपिका)

संयोग से भिन्न होने पर भी संयोग का असमवायिकारण होना कार्य है। कर्मत्वजातिमद् (तर्कसंग्रह दीपिका)= कर्म कर्मत्वजाति से युक्त होता है।

- कर्म द्रव्य में समवेत रहता है।
- कर्म संयोग एवं विभाग का साक्षात् कारण होता है।
- कर्म कर्मत्वजातिमान् होता है।
- कर्म द्रव्यों में स्थित विभिन्न परिवर्तनों का कारण होता है।
- कर्म अनित्य होता है अर्थात् इसकी सत्ता एक सीमित समयान्तराल तक होती है।
- यह सभी द्रव्यों में नहीं पाया जाता है। केवल- पृथिवी, जल, तेज, वायु और मन में कर्म की स्थिति बतायी गयी है।
- कर्म से निश्चित द्रव्यों का निर्माण नहीं होता।
- कर्म निर्गुण होता है।
- न्यायवैशेषिक के अनुसार द्रव्य और गुण दोनों नित्य है, जबकि कर्म नित्य न होकर क्षणिक होता है।
- प्रशस्तपाद ने गुरुत्व, द्रवत्व, भावना और संयोग इत्यादि प्रमुख उपाधियों के कारण कर्म की स्थिति को माना है।

विभिन्न शास्त्रों की दृष्टि में कर्म

- व्याकरणशास्त्र में ''कर्तुरीप्सिततमं कर्म'' से कर्ता को ईप्सिततम की कर्मसंज्ञा कही गयी है।
- मीमांसा दर्शनशास्त्र में नित्य, नैमित्तिक और काम्य- इन तीन को कर्म कहा गया है।
- श्रीमद्भगवद्गीता में-सात्त्विक कर्म, राजसिक कर्म, तामसिक कर्म- बताये गये हैं। (गीता 18.7)
- वेदान्तशास्त्र में सञ्चित एवं प्रारब्ध दो कर्म माने गये हैं।

वैशेषिक दर्शन का चतुर्थ पदार्थ

4. सामान्य

- **सामान्य**- नित्यम् एकम् अनेकानुगतं सामान्यम्

- 'सामान्य' नामक पदार्थ नित्य है तथा एक एवं अनेक में रहता है।
- इसकी स्थिति द्रव्य, गुण एवं कर्म में देखी जाती है- द्रव्यगुणकर्मवृत्तिः
- **सामान्य के प्रकार-** इसके दो प्रकार है- पर और अपर
- **परसामान्य-** परमधिकदेशवृत्ति (दीपिका टीका) पर सामान्य अधिक देश में रहने वाला होता है। पर सामान्य सत्ता है। 'परं सत्ता'
- **अपर सामान्य-** अपरं न्यूनदेशवृत्ति (दीपिका टीका)
  अपर सामान्य कम देश में रहता है। द्रव्यत्व आदि अपर सामान्य हैं। 'अपरं द्रव्यत्वादि'

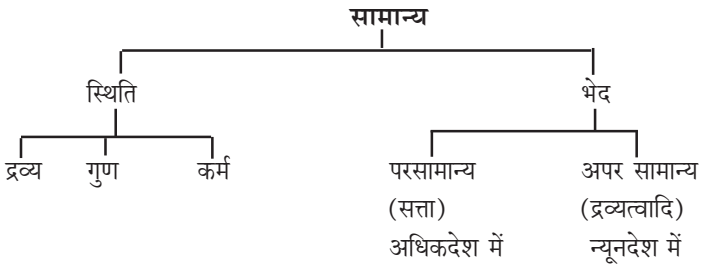

सामान्य पदार्थ के विषय में कुछ स्मरणीय तथ्य

- न्यायवैशेषिक में सामान्य अथवा जाति वह पदार्थ है, जिसके कारण एक ही प्रकार की विभिन्न वस्तु अथवा प्राणियों में समानता की प्रतीति होती है। जैसे मनुष्य में मनुष्यत्व, गो में गोत्व, घट में घटत्व आदि।
- यह सामान्य वस्तु या प्राणी में समवाय सम्बन्ध से विद्यमान रहता है। इसी को जाति, सत्ता एवं भाव भी कहा जाता है।
- सामान्य नित्य होता है।
- यह अनेक में विद्यमान रहता है, एक में इसकी स्थिति सम्भव नहीं है।
- इसकी स्थिति पदार्थों मे समवाय सम्बन्ध से बनी रहती है।
- यह केवल द्रव्य, गुण और कर्म में ही समवेत रूप से रहता है शेष में नहीं।
- इसके दो भेद हैं (1) पर सामान्य (2) अपर सामान्य
- पर सामान्य अधिक देश में रहता है। अपर सामान्य एक देश में विद्यमान रहता है।

वैशेषिक दर्शन का पाँचवा पदार्थ विशेष

- **विशेष-** 'नित्यद्रव्यवृत्तयो व्यावर्तका विशेषाः'
- नित्य द्रव्य में रहने वाले व्यावर्तक विशेष हैं।
- विशेष पदार्थ के प्रकार- 'नित्यद्रव्यवृत्तयो विशेषास्त्वनन्ता एव' अर्थात् नित्यद्रव्यवृत्ति वाले विशेष नामक पदार्थ तो अनन्त ही हैं।

विशेष पदार्थ किन द्रव्यों में रहता है- यह विशेष नित्यद्रव्यों में रहता है। ये नित्यद्रव्य हैं-

पृथिवी, जल, तेज, वायु के परमाणु तथा आकाश, काल, दिक् आत्मा और मन।

''पृथिव्यादि चतुष्टयस्य परमाणव आकाशादिपञ्चकस्य नित्यद्रव्याणि'' (तत्त्वदीपिका)

विशेष नामक पदार्थ के विषय में स्मरणीय तथ्य

- इस विशेष पदार्थ के विवेचन के कारण ही इस दर्शन का नाम **वैशेषिक** पड़ा। यह इस दर्शन की **मौलिक कल्पना** है।
- **विशेष का अर्थ है-**विश्लेषक अर्थात् भेदक धर्म। सभी नित्य द्रव्यों में एक भेदक धर्म माना गया है, जिसके कारण उनमें भेद की प्रतीति हुआ करती है, वही वैशेषिक का विशेष नामक पदार्थ है।
- 'विशेष' पदार्थ व्यक्ति की पृथकता को दर्शाता है। सामान्य पदार्थ समष्टिगत होता है, 'विशेष' नामक पदार्थ व्यक्तिगत होता है।
- वैशेषिकों का मानना है कि नित्यद्रव्यों की परस्पर भिन्नता सिद्ध करने के लिए ही 'विशेष' पदार्थ की आवश्यकता है। अनित्यद्रव्यों की पारस्परिक भिन्नता के लिए 'विशेष' पदार्थ की कोई आवश्यकता नहीं है,परन्तु नित्यद्रव्यों विशेषतः परमाणुओं में पारस्परिक भिन्नता का निर्धारण किसी बाह्य आधार पर सम्भव नहीं है, इसलिए इन नित्यद्रव्यों में एक-एक विशेष की सत्ता मानी जाती है।
- अन्नम्भट्ट इस विशेष पदार्थ को नित्यद्रव्य में रहने वाला तथा अनन्त मानते हैं। प्रत्येक नित्यद्रव्य में पृथक्-पृथक् पाये जाने के कारण विशेष अनन्त हैं।
- **प्रशस्तपाद के अनुसार-** अन्त में रहने वाले ही अन्त्य कहे जाते हैं तथा अपने आश्रयद्रव्य को अन्य सभी वस्तुओं से पृथक् करने के कारण ये 'विशेष' कहलाते हैं।

  ''अन्तेषु भवा अन्त्याः स्वाश्रयविशेषकत्वाद् विशेषाः'' (प्रशस्तपादभाष्य)
- विशेष पदार्थ द्रव्य,गुण,कर्म एवं सामान्य से भिन्न पदार्थ हैं क्योंकि ये केवल नित्यद्रव्य में ही समवेत होकर रहते हैं **''विशेषास्तु नित्यद्रव्यसमवेताः** (सप्तपदार्थी)।
- रघुनाथ शिरोमणि आदि कुछ आधुनिक नैयायिक 'विशेष' पदार्थ को नहीं मानते हैं।
- कुमारिलभट्ट, प्रभाकर,बौद्ध,वेदान्ती आदि विशेष पदार्थ को अस्वीकार करते हुए इसका खण्डन करते हैं।
- राधाकृष्णन कहते हैं कि इस विशेष पदार्थ की केवल काल्पनिक सत्ता है, वास्तविक नहीं।
- विशेष पदार्थ की कुछ अन्य परिभाषायें-
  - स्वतो व्यावर्तकत्वम् (जो स्व से स्व को पृथक् करे)
  - जातिरहितत्वे सति नित्यद्रव्यमात्रवृत्तिः
  - एकमात्रसमवेतत्वे सति सामान्यशून्यः

- अत्यन्तव्यावृत्तिः

इन सभी परिभाषाओं का आशय है कि एक नित्य पदार्थ को दूसरे पदार्थ से पृथक् करने के लिए 'विशेष' को भी पदार्थ मानना आवश्यक है।

➢ कणाद ने वैशेषिकसूत्र में 'विशेष' पदार्थ के विषय में कहा है-
''अन्यत्रान्त्येभ्यो विशेषेभ्यः'' (1.2.6)

6. वैशेषिक दर्शन का छठवाँ पदार्थ समवाय

समवाय- नित्यसम्बन्धः समवायः
नित्यसम्बन्ध को समवाय कहते हैं।

समवाय के प्रकार- समवाय तो एक ही होता है- **समवायस्त्वेक एव स्थिति-** यह समवाय पदार्थ अयुतसिद्ध पदार्थों में रहता है। 'अयुतसिद्धवृत्तिः'

अयुतसिद्ध क्या है- ययोर्द्वयोर्मध्ये एकमविनश्यदपराश्रितमेवावतिष्ठते तावयुतसिद्धौ

➢ जिन दो पदार्थों में एक अविनश्यदवस्था वाला दूसरे पर आश्रित हो, वे दोनों अयुतसिद्ध कहे जाते हैं।

अयुतसिद्ध के उदाहरण-

➢ अयुतसिद्ध के पाँच उदाहरण दिये जाते हैं-

- **अवयव एवं अवयवी-** जैसे कपाल (अवयव) घट (अवयवी)
- **गुण एवं गुणी-** जैसे घट (गुणी) घटरूप (गुण)
- **क्रिया एवं क्रियावान् –** क्रिया क्रियावान् के बिना नहीं हो सकती। यहाँ क्रियावान् समवायी है तथा उसमें समवेत रहती है।
- **जाति और व्यक्ति-** जैसे घटत्व जाति सदैव घटव्यक्ति में अविनश्यद् रहती है।
- **नित्यद्रव्य विशेष-** नित्यद्रव्यों में विशेष नामक पदार्थ रहता है अतः विशेष एवं नित्यद्रव्य दोनों अयुतसिद्ध हैं।

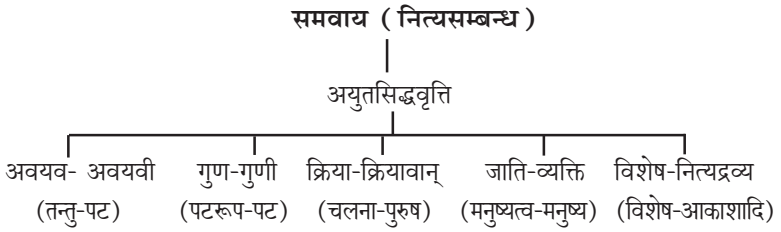

समवाय पदार्थ के सम्बन्ध में कुछ स्मरणीय तथ्य

➢ दो अयुतसिद्ध पदार्थों में रहने वाले नित्यसम्बन्ध को समवाय कहा गया है।

➢ जिन दो पदार्थों की स्थिति स्वतन्त्र रूप से अलग-अलग बनी रह सकती है, वे दोनों पदार्थ युतसिद्ध कहलायेंगे। जैसे- पुस्तक और लेखनी। इसके विपरीत जो दो पदार्थ पृथक् सिद्ध न हो सके, वे अयुतसिद्ध कहे जायेंगे। जैसे-तन्तु और पट। कपाल और

घट आदि।

- समवाय को संक्षेपतः ऐसे भी परिभाषित किया जा सकता है-
  ''समवाय दो या दो से अधिक अयुतसिद्ध पदार्थों के बीच विद्यमान, संयोग से भिन्न एक नित्य सम्बन्ध है। जो कारणवाद पर आधारित होकर अपने सम्बन्धियों में स्वरूप सम्बन्ध से विद्यमान रहता है, जिसका हम केवल अनुमान कर सकते हैं।''
- संयोग सम्बन्ध केवल दो द्रव्यों के बीच ही होता है 'द्रव्यद्रव्ययोरेव संयोगः' जबकि समवाय सम्बन्ध द्रव्यों के साथ-साथ उनसे भिन्न पदार्थों में भी सम्भव हैं।
- डॉ. धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री के अनुसार -'यदि द्रव्य,गुण आदि प्रथम पाँच पदार्थ न्यायवैशेषिक रूप ढाँचे के लिए ईटों के समान हैं तो समवाय पदार्थ उन ईटों को जोड़ने वाले गारे की भाँति है।
- यह **समवाय नित्य सम्बन्ध** है। यहाँ नित्य से तात्पर्य है कि यह कार्य की उत्पत्ति के बिना उत्पन्न नहीं होता तथा कार्य के नाश के बिना नष्ट नहीं होता।
- इसप्रकार संक्षेप में समवाय को कह सकते हैं कि-
  - ☆ समवाय नित्य सम्बन्ध है, और संयोग सम्बन्ध से भिन्न है।
  - ☆ समवाय एक है
  - ☆ समवाय दो या उससे अधिक अयुतसिद्ध पदार्थों के मध्य रहने वाला सम्बन्ध है
  - ☆ समवाय द्रव्यादि से भी भिन्न एक पृथक् पदार्थ है।
  - ☆ समवाय स्वयं कहीं समवेत होकर नहीं रहता, अपितु अपने सम्बन्धियों में स्वरूप सम्बन्ध से ही रहता है।

7. वैशेषिक दर्शन का सातवाँ पदार्थ अभाव

- वैशेषिक दर्शन के प्रारम्भ में अभाव नामक पदार्थ का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। कणाद ने छः भावपदार्थों का ही विवरण दिया है।
- प्रशस्तपाद ने भी छः पदार्थों की चर्चा की है।
- उदयनाचार्य, श्रीधर, शिवादित्य आदि परवर्ती वैशेषिकाचार्यों ने अभाव नामक सातवें पदार्थ का परिगणन किया।
- प्राचीन आचार्यों ने अभाव का उल्लेख नहीं किया था, अतः इसका लक्षण भी नहीं किया। अन्नम्भट्ट ने भी इसका लक्षण न करके सीधे चार भेद बताते हैं।
- कुछ वैशेषिकाचार्यों की दृष्टि में अभाव की परिभाषा 'न भावः इति अभावः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार वस्तु या प्राणी के भाव का न होना ही 'अभाव' कहलाता है। **'भावभिन्नः पदार्थः अभावः'**
- दार्शनिक दृष्टि से ''किसी वस्तु का किसी विशेषकाल में किसी विशेष स्थान में अनुपस्थिति अभाव है।''

- प्रतियोगिज्ञानाधीनोऽभावः (सप्तपदार्थी)
  आचार्य शिवादित्य ने अपने 'सप्तपदार्थी' नामक ग्रन्थ में अभाव को अपने प्रतियोगी ज्ञान के अधीन स्वीकार किया है।
- 'द्रव्यादिषट्कान्योन्याभावः'-(न्यायसिद्धान्तमुक्तावली)
  आचार्य विश्वनाथ अपने ग्रन्थ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली में द्रव्य, गुण, कर्मादि छः पदार्थों के अन्योन्याभाव को ही अभाव कहते हैं।
- नञर्थप्रत्ययविषयोऽभावः(लक्षणावली)
  उदयनाचार्य अपनी कृति लक्षणावली में अभाव को नञर्थक ज्ञान का विषय मानते हैं।
- **प्रतियोगिज्ञानाधीनज्ञानविषयत्वम् अभावत्वम्-**
  प्रतियोगिज्ञान के अधीन जो ज्ञान का विषय है, उसे अभाव कहते हैं।
- **यस्याभावः स प्रतियोगी-**अर्थात् जिसका अभाव कहा जा रहा है, वही प्रतियोगी होता है। जैसे 'भूतले घटाभावः' इस कथन में अभाव का प्रतियोगी घट ही है। जिस तरह घटाभाव का प्रतियोगी घट ही होता है उसी तरह पटाभाव का प्रतियोगी पट होगा।

अभाव के भेद

अभाव के चार भेद हैं-

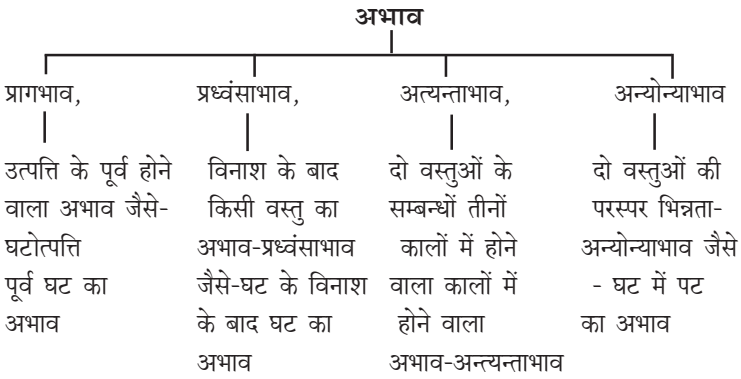

1. **प्रागभाव-** अनादिः सान्तः प्रागभावः। उत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्य।
   प्रागभाव अनादि एवं सान्त होता है। उत्पत्ति के पूर्व कार्य का प्रागभाव होता है।
2. **प्रध्वंसाभाव -** सादिरनन्तः प्रध्वंसः। उत्पत्त्यनन्तरं कार्यस्य। जिसका आदि हो अन्त न हो, वह प्रध्वंसाभाव है उत्पत्ति के अनन्तर कार्य का प्रध्वंसाभाव होता है।

- यह अभाव कार्य के नष्ट होने के बाद जन्म लेता है - विनाशानन्तरं कार्यस्य। किन्तु इसका अन्त कभी नहीं होता, इसलिए यह अनन्त है।

3. अत्यन्ताभाव-

- त्रैकालिकसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽत्यन्ताभावः
- त्रैकालिक= भूत,भविष्य,वर्तमान- तीनों कालों में होने वाले और संसर्ग से युक्त प्रतियोगिता जिसमें है, उस अभाव को अत्यन्ताभाव कहा जाता है। जैसे-भूतले घटो नास्ति। यहाँ पर भूतल में घट का अत्यन्ताभाव है।
- **अनादिरनन्तोऽत्यन्ताभावः,** यथा-भूतले घटो नास्ति।
  यहाँ भूतल में संयोग सम्बन्ध से घट का अभाव है। घटाभाव का प्रतियोगी घट है। अभाव भूतल में है। अतः भूतल घटाभाव का अनुयोगी है। अत्यन्ताभाव को प्रकट करता है।
- प्राचीन नैयायिक **'वायौ रूपाभावः'** अर्थात् वायु में रूप के अभाव को अत्यन्ताभाव कहते हैं। क्योंकि वायु में रूप का भाव, न है,न कभी था, न कभी होगा। वायु में यह अभाव नित्य एवं शाश्वत है। इसप्रकार यह त्रैकालिक अत्यन्ताभाव है।

4. अन्योन्याभाव- तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽन्योन्याभावः। यथा - घटः पटः न इति

- तादात्म्य सम्बन्ध से युक्त प्रतियोगिता वाले अभाव को अन्योन्याभाव कहा जाता है। यथा- घट पट नहीं है और पट घट नहीं है।
- अन्योन्याभाव का तात्पर्य है दो वस्तुओं की पारस्परिक भिन्नता। अर्थात् एक दूसरे में एक दूसरे का अभाव अन्योन्याभाव है।
- अत्यन्ताभाव संसर्गावच्छिन्न प्रतियोगिता का अभाव होता है जब कि अन्योन्याभाव तादात्म्यप्रतियोगिता का अभाव होता है।

प्रमाण विवेचन

- आचार्य अन्नम्भट्ट तर्कसंग्रह के द्वितीय पदार्थ गुण के विवेचन प्रसङ्ग में 24 गुणों का विवेचन करते हैं। इसी सन्दर्भ में बुद्धि नामक सोलहवें गुण के विवेचन प्रसङ्ग में बुद्धि के दो भेद – स्मृति और अनुभव बताते हैं। अनुभव – यथार्थ और अयथार्थ भेद से दो प्रकार का होता है। यथार्थानुभव के चार भेद – प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति और शाब्द। इनके प्रत्यक्ष, अनुमान उपमान और शब्द ये चार करण बताये गये हैं, यही चार प्रमाण हैं। जिनका विवेचन यहाँ किया जा रहा है।

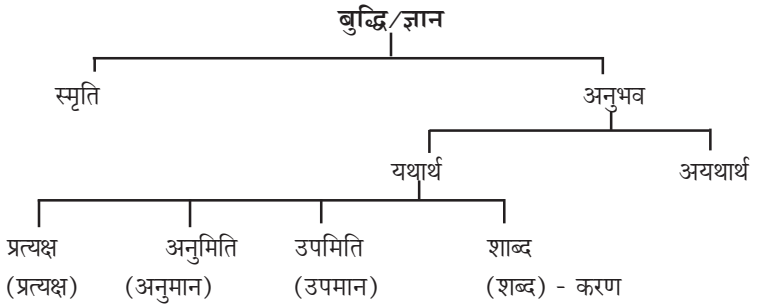

भारतीय दर्शन में प्रमाण विचार

1. चार्वाकदर्शन (1) - प्रत्यक्ष
2. जैनदर्शन (2) - प्रत्यक्ष एवं परोक्ष
3. बौद्धदर्शन (2) -प्रत्यक्ष एवं अनुमान
4. वैशेषिकदर्शन (2) - प्रत्यक्ष एवं अनुमान
5. सांख्य एवं योगदर्शन (3) - प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आप्तवचन (शब्द)
6. न्यायदर्शन (4) - प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द प्रमाण
7. प्रभाकरमीमांसक (5) - प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द और अर्थापत्ति
8. भाट्टमीमांसक (6) - प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि (अभाव) प्रमाण। वेदान्त दर्शन भी इन्हीं प्रमाणों को स्वीकार करता है।
9. पौराणिक (8) – प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, सम्भव, ऐतिह्य।
10. शून्यवादी बौद्ध उपर्युक्त सभी प्रमाणों को स्वीकार नहीं करते हैं।
11. प्रशस्तपाद ने उपमान एवं शब्द प्रमाण के स्थान पर क्रमशः स्मृति तथा आर्षज्ञान को मानते हैं।

प्रमाण-

- प्रमायाः करणं प्रमाणम् (दीपिका टीका) प्रमा के करण अर्थात् असाधारणकारण को प्रमाण कहा है।
- 'प्रमीयते अनेन इति प्रमाणम्' (विद्वत्गण)
- उपलब्धिसाधनानि प्रमाणानि (वात्स्यायन)
  उपलब्धि अर्थात् ज्ञान के साधन को प्रमाण माना है।
- **करण- असाधारणं कारणं करणम्**
  असाधारण कारण करण है।
- **कारण-** कार्यनियतपूर्ववृत्ति कारणम् - कार्य के पूर्व नियतरूप से रहने वाला कारण है।
- **कार्य-** कार्यं प्रागभावप्रतियोगि - प्रागभाव का प्रतियोगी कार्य है।
- कारण के प्रकार – कारण तीन प्रकार का है –
  (1) समवायिकारण (2) असमवायिकारण (3) निमित्तकारण

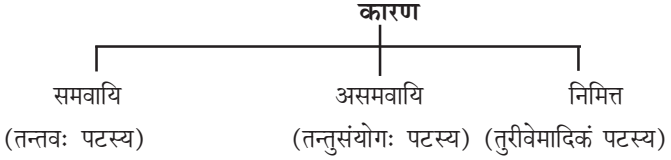

'कारणं त्रिविधम् – समवाय्यसमवायिनिमित्तभेदात्'

➢ **(1) समवायिकारण** - 'यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम्' जिसमें समवाय सम्बन्ध से कार्य उत्पन्न होता है, वह समवायिकारण है।

जैसे – पट का समवायिकारण तन्तु। अपने रूप का पट।

(2) असमवायिकारण – 'कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतत्वे सति यत्कारणं तद् असमवायिकारणम्'

यथा (i) तन्तुसंयोगः पटस्य (ii) तन्तुरूपं पटरूपस्य

कार्य अथवा कारण के साथ एक पदार्थ में समवेत होने पर जो कारण है, वह असमवायिकारण है। यथा – पट का तन्तु संयोग तथा पटरूप का तन्तुरूप असमवायिकारण है।

(3) निमित्तकारण – 'तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणम्'

समवायि एवं असमयवायि दोनों कारणों से भिन्न निमित्तकारण है। जैसे- पट का तुरी, वेमा आदि।

➢ इन तीनों (समवायि, असमवायि, निमित्त) कारणों में जो असाधारण कारण है वही करण है।

प्रत्यक्षप्रमाणम्

1. प्रत्यक्षप्रमाणम् –

➢ **'प्रत्यक्षज्ञानकरणं प्रत्यक्षम्'** - प्रत्यक्षज्ञान का करण प्रत्यक्ष है।

➢ 'इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्' – इन्द्रिय तथा पदार्थ के सन्निकर्ष अर्थात् संयोग से उत्पन्न होने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष है।

➢ 'प्रतिगतम् अक्षं प्रत्यक्षम्' – यह प्रत्यक्ष की व्युत्पत्ति है।

प्रत्यक्ष प्रमाण के दो भेद हैं – (1) निर्विकल्पक (2) सविकल्पक

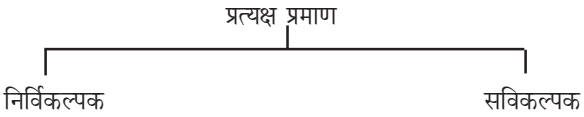

(1) **निर्विकल्पक –** 'निष्प्रकारकं ज्ञानं निर्विकल्पकम्' निष्प्रकारक ज्ञान निर्विकल्पक है। यथा – किञ्चिद् इदम् इति (यह कुछ है)

(2) **सविकल्पकम् –** 'सप्रकारकं ज्ञानं सविकल्पकम्।' सप्रकारकज्ञान सविकल्पक है।

यथा- डित्थोऽयम्, ब्राह्मणोऽयम्, श्यामोऽयम्।
(यह डित्थ है) (यह ब्राह्मण है) (यह श्याम है)

इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष – प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिन्द्रियार्थसन्निकर्षः षड्विधः

प्रत्यक्षज्ञान का हेतु इन्द्रिय एवं पदार्थ का सन्निकर्ष छः प्रकार का होता है

(i) संयोग (ii) संयुक्तसमवाय (iii) संयुक्तसमवेत समवाय

(iv) समवाय (v) समवेतसमवाय (vi) विशेषण विशेष्यभाव

(1) **संयोगसन्निकर्ष –** 'चक्षुषा घटप्रत्यक्षजनने संयोगः सन्निकर्षः' - चक्षु के द्वारा घट के प्रत्यक्ष ज्ञान में संयोग सन्निकर्ष होता है।

(2) **संयुक्तसमवायसन्निकर्ष –** 'घटरूपप्रत्यक्षजनने संयुक्तसमवायः सन्निकर्षः' घट के रूप के प्रत्यक्षज्ञान में संयुक्तसमवाय सन्निकर्ष होता है, क्योंकि चक्षु से संयुक्त घट में रूप समवाय सम्बन्ध से रहता है।

(3) **संयुक्तसमवेतसमवाय सन्निकर्ष –** 'रूपत्वसामान्यप्रत्यक्षे संयुक्तसमवेतसमवायः सन्निकर्षः' - रूपत्वजाति के प्रत्यक्ष में संयुक्तसमवेतसमवाय सन्निकर्ष होता है, क्योंकि चक्षु से संयुक्त घट में रूप समवाय सम्बन्ध से तथा रूप में रूपत्व समवाय सम्बन्ध से रहता है।

(4) **समवायसन्निकर्ष –** 'श्रोत्रेण शब्दसाक्षात्कारे समवायः सन्निकर्षः' - श्रोत्र (कर्ण) के द्वारा शब्द साक्षात्कार में समवायसन्निकर्ष होता है।

➢ कर्णविवर में विद्यमान आकाश ही श्रोत्र है।

➢ शब्द आकाश का गुण है तथा गुण एवं गुणी में समवाय सम्बन्ध होता है।

(5) **समवेतसमवायसन्निकर्ष –** 'शब्दत्वसाक्षात्कारे समवेतसमवायः सन्निकर्षः' शब्द जाति के प्रत्यक्ष में समवेतसमवायसन्निकर्ष होता है, क्योंकि शब्द में शब्दत्व समवायसम्बन्ध से रहता है।

(6) **विशेषणविशेष्यभाव सन्निकर्ष –** 'अभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावः सन्निकर्षः' - अभाव के प्रत्यक्ष में विशेषणविशेष्यभाव सन्निकर्ष होता है। क्योंकि 'भूतल घटाभाव वाला है' इस प्रकार के ज्ञान में चक्षु से संयुक्त भूतल में घटाभाव विशेषण है।

➢ इसप्रकार छः सन्निकर्षों से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष है, उसका करण इन्द्रिय है, अतः इन्द्रिय ही प्रत्यक्ष प्रमाण है, यह सिद्ध होता है। 'तस्मात् इन्द्रियं प्रत्यक्षप्रमाणमिति सिद्धम्'

	इन्द्रिय	पदार्थ	सन्निकर्ष
1.	चक्षु	घट	संयोग
2.	चक्षु	घटरूप	संयुक्तसमवाय
3.	चक्षु	घटरूपत्व	संयुक्तसमवेतसमवाय
4.	श्रोत्र	शब्द	समवाय
5.	श्रोत्र	शब्दत्व	समवेतसमवाय
6.	चक्षु	घटाभाव (विशेषण) भूतल (विशेष्य)	विशेषण विशेष्यभाव

अनुमानप्रमाण

- **अनुमान –**'अनुमितिकरणम् अनुमानम्' - अनुमिति का करण अनुमान है।
- **अनुमिति –** 'परामर्शजन्यं ज्ञानम् अनुमितिः' – परामर्श से उत्पन्न होने वाला ज्ञान अनुमिति है।
- **परामर्श –** 'व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्शः' – व्याप्ति से विशिष्ट पक्षधर्मताज्ञान को परामर्श कहते हैं।यथा – 'वह्निव्याप्यधूमवान् अयं पर्वतः' – यह ज्ञान परामर्श है वह्निव्याप्य यह पर्वत धूमवान् है। इसी परामर्श से उत्पन्न 'पर्वतो वह्निमान्' यह ज्ञान अनुमिति है।

व्याप्ति –

- 'यत्र यत्र धूमः तत्र तत्र अग्निः' इति साहचर्यनियमो व्याप्तिः - 'जहाँ जहाँ धूम है वहाँ वहाँ अग्नि है' – यह साहचर्यनियम व्याप्ति है।

पक्षधर्मता –

- 'व्याप्यस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मता'- व्याप्य का पर्वतादि में रहना पक्षधर्मता है।

अनुमान- (1) स्वार्थानुमान (2) परार्थानुमान

1. **स्वार्थानुमान -** 'स्वार्थं स्वानुमितिहेतुः' – स्वार्थानुमान अपने अनुमिति ज्ञान का हेतु है।

- जैसे – कोई स्वयं ही बार-बार देखकर 'जहाँ जहाँ धुआँ है वहाँ वहाँ अग्नि है' इसप्रकार रसोईघर आदि में व्याप्ति को ग्रहण करके पर्वत के समीप जाकर उसमें अग्नि का सन्देह होने पर पर्वत में धूम को देखता हुआ 'जहाँ जहाँ धुआँ वहाँ वहाँ अग्नि' इस व्याप्ति का स्मरण करता है। तत्पश्चात् 'यह पर्वत अग्नि से व्याप्त धुएँ वाला है' यह ज्ञान उत्पन्न होता है। यही लिङ्गपरामर्श कहलाता है। इससे पर्वत वह्निमान् है, यह अनुमितिज्ञान उत्पन्न होता है। यही स्वार्थानुमान है।
- इसप्रकार द्विविध अनुमान में जो अनुमान अपने ज्ञान के लिए किया जाय, वह स्वार्थानुमान है – स्वस्य अर्थः प्रयोजनं यस्मात् तत् स्वार्थम्। 'स्वार्थं स्वप्रतिपत्तिहेतुः स्वानुमितिहेतुर्वा'

2. **परार्थानुमान -** 'यत्तु स्वयं धूमादग्निमनुमाय परं प्रति बोधयितुं पञ्चावयववाक्यं प्रयुज्यते तत्परार्थानुमानम्'

   जो स्वयं धूम से अग्नि का अनुमान करके दूसरें को समझाने के लिए पञ्चावयववाक्य का प्रयोग किया जाता है, वह परार्थानुमान है।

पञ्चावयव वाक्यों की प्रक्रिया

- प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय तथा निगमन – ये पाँच अवयव हैं।

1. **प्रतिज्ञा –** पर्वतो वह्निमान् (पर्वत वह्निमान् है)

2. **हेतु -** धूमवत्त्वात् (क्योंकि वह धूमवान् है)
3. **उदाहरण –** यो यो धूमवान् स स वह्निमान् यथा- महानसः (जो जो धूमवान् होता है, वह वह वह्निमान् होता है, जैसे – रसोईघर)
4. **उपनय –** तथा चायम् – (उसीप्रकार यह है)
5. **निगमन –** तस्मात् तथा इति (अतः इसमें भी वैसी ही अग्नि है)

➢ इस प्रकार पञ्चावयव वाक्य के द्वारा प्रतिपादित लिङ्ग से दूसरा व्यक्ति भी पर्वत पर अग्नि का अनुमान कर लेता है।

➢ स्वार्थानुमिति तथा परार्थानुमिति में लिङ्गपरामर्श ही करण है, इसलिए लिङ्गपरामर्श अनुमान है। **'तस्मात् लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम्'**

लिङ्ग के प्रकार

लिङ्ग तीन प्रकार के हैं – (i) अन्वयव्यतिरेकी (ii) केवलान्वयी (iii) केवलव्यतिरेकी

(i) **अन्वयव्यतिरेकी –** 'अन्वयेन व्यतिरेकेण च व्याप्तिमद् अन्वयव्यतिरेकि' अन्वय एवं व्यतिरेक से व्याप्तिमान् अन्वयव्यतिरेकी होता है।

➢ यथा – वह्नौ साध्ये धूमवत्त्वम् =वह्नि के साध्य होने पर धूमवत्त्व लिङ्ग।

➢ यत्र धूमः तत्र अग्निः यथा-महानसः = जहाँ धुआँ होता है, वहाँ आग होती है। जैसे – रसोईघर। यह अन्वयव्याप्ति है।

➢ यत्र वह्निर्नास्ति तत्र धूमोऽपि नास्ति, यथा-ह्रदः = जहाँ आग नहीं होती वहाँ धुआँ नहीं होता, जैसे – सरोवर। यह व्यतिरेक व्याप्ति है।

(ii) **केवलान्वयी –** 'अन्वयमात्रव्याप्तिकं केवलान्वयि' – अन्वयमात्र व्याप्ति वाला लिङ्ग केवलान्वयी है। यथा - घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वात् पटवत् जैसे – घट अभिधेय है क्योंकि वह प्रमेय है। यथा – पट।

यहाँ प्रमेयत्व तथा अभिधेयत्व की व्यतिरेक व्याप्ति नहीं है, क्योंकि सभी कुछ प्रमेय और अभिधेय है।

(i) **केवलव्यतिरेकी** – 'व्यतिरेकमात्रव्याप्तिकं केवलव्यतिरेकि' – व्यतिरेक मात्र व्याप्ति वाला लिङ्ग केवलव्यतिरेकी है।

➢ यथा – पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात् यदितरेभ्यो न भिद्यते न तद् गन्धवत् यथा – जलम्।

जैसे- पृथिवी इतर से भिन्न है, क्योंकि गन्धवती है, जो इतर से भिन्न नहीं है वह गन्धवती नहीं है, जैसे – जल।

➢ यह पृथिवी वैसी (गन्धरहित) नहीं है इसलिए उसके समान नहीं है यहाँ जो गन्धवान् है, वह इतर पदार्थों से भिन्न है। इसका अन्वय दृष्टान्त नहीं है क्योंकि पृथिवी मात्र ही पक्ष है।

➢ **पक्ष –** 'सन्दिग्धसाध्यवान् पक्षः'

जहाँ साध्य सन्दिग्ध रूप से पाया जाये, उसे पक्ष कहा जाता है। यथा- धूमवत्त्वे हेतौ पर्वतः। जैसे- धूमवत्त्व हेतु में पर्वत।

➢ **सपक्ष-** 'निश्चितसाध्यवान् सपक्षः।'

निश्चित साध्य वाला सपक्ष होता है। यथा- रसोईघर।

➢ **विपक्ष-** 'निश्चितसाध्याऽभाववान् विपक्षः।'

निश्चित साध्य का अभाव वाला विपक्ष होता है।

जैसे- महासरोवर

पक्ष - सन्दिग्धसाध्यवान् (पर्वतः)
सपक्ष - निश्चितसाध्यवान् (महानसः)
विपक्ष - निश्चितसाध्य- अभाववान् (महाह्रदः)

हेत्वाभास

➢ हेतोः आभासाः = हेतु के दोष

➢ हेतुवद् आभासन्ते इति हेत्वाभासः = हेतु की तरह प्रतीत होना। दुष्ट हेतु या दोषयुक्त हेतु। इसप्रकार जो हेतु के समान भासित होता है किन्तु हेतु नहीं हो, वह हेत्वाभास कहलाता है।

हेत्वाभास के पाँच प्रकार-

1.सव्यभिचार 2. विरुद्ध 3. सत्प्रतिपक्ष 4. असिद्ध 5. बाधित

'सव्यभिचारि-विरुद्ध-सत्प्रतिपक्ष-असिद्ध- बाधिताः पञ्च हेत्वाभासाः'

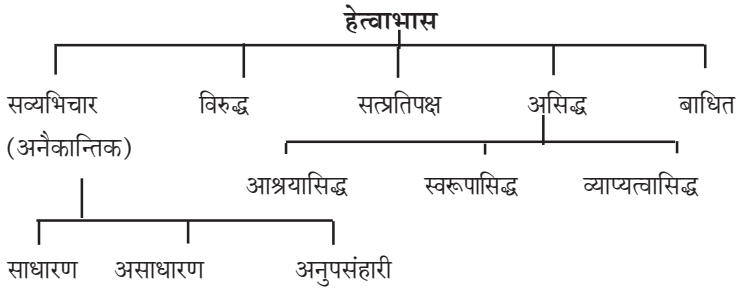

➢ सव्यभिचारी अनैकान्तिक है। यह तीन प्रकार का है-

(i) साधारण (ii) असाधारण (i) अनुपसंहारी

(i) **साधारण अनैकान्तिक हेत्वाभास-** साध्य- अभाववद्वृत्तिः साधारणोऽनैकान्तिकः

➢ साध्य के अभाव में रहने वाला साधारण अनैकान्तिक है।

- जैसे- पर्वतो वह्निमान् प्रमेयत्वात् इति।
- पर्वत वह्निमान् है, क्योंकि वह प्रमेय है।
  प्रमेयत्व वह्नि के अभाव वाले सरोवर में रहता है।

(ii) **असाधारण अनैकान्तिक हेत्वाभास-** 'सर्वसपक्षविपक्षव्यावृत्तः पक्षमात्रवृत्तिरसाधारणः'

- जो सपक्ष एवं विपक्ष में न रहकर केवल पक्ष में रहे, वह असाधारण है।
  यथा- शब्दो नित्यः शब्दत्वात् इति।
  जैसे- शब्द नित्य है, क्योंकि वह शब्द है। शब्द सारे नित्य एवं अनित्य में न रहकर केवल शब्द में रहता है

(iii) **अनुपसंहारी अनैकान्तिक हेत्वाभास-**
'अन्वयव्यतिरेकदृष्टान्तरहितोऽनुपसंहारी'

- अन्वय एवं व्यतिरेक दृष्टान्त से रहित हेत्वाभास अनुपसंहारी होता है।
  यथा- सर्वम् अनित्यं प्रमेयत्वात् इति। सब अनित्य है प्रमेयत्व के कारण। यहाँ 'सर्व' पक्ष है इसलिए दृष्टान्त नहीं है।
- तर्कभाषा में अनैकान्तिक(सव्यभिचारी) हेत्वाभास के दो ही भेद कहे गये हैं साधारण एवं असाधारण।

2. विरुद्ध हेत्वाभास-

'साध्याभावव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः' साध्य के अभाव से व्याप्त हेतु विरुद्ध है।
यथा- शब्दो नित्यः कृतकत्वात् इति
जैसे- शब्द नित्य है कार्य होने के कारण यहाँ कृतकत्व नित्यत्व का अभाव अनित्यत्व से व्याप्त है।

3. सत्प्रतिपक्ष हेत्वाभास-

- 'यस्य साध्य-अभावसाधकं हेत्वन्तरं विद्यते स सत्प्रतिपक्षः'
  जिस हेतु के साध्य के अभाव को सिद्ध करने वाला अन्य हेतु है, वह सत्प्रतिपक्ष है।
- यथा- शब्दो नित्यः श्रावणत्वाच्छब्दवत्।
  - ☆ शब्द नित्य है। श्रावणत्व के कारण शब्द के समान।
  - ☆ शब्दो अनित्यः कार्यत्वाद् घटवत् इति।
  - ☆ शब्द अनित्य है, कार्य होने के कारण, घट के समान।

4. असिद्ध हेत्वाभास

- असिद्ध हेत्वाभास तीन प्रकार का होता है-
  (i) आश्रयासिद्ध (ii) स्वरूपासिद्ध (iii) व्याप्यत्वासिद्ध
- 'स्वयम् असिद्धः कथं परान् साधयति' अर्थात् जहाँ हेतु की पक्ष में विद्यमानता निश्चित नहीं होती वहाँ असिद्ध हेत्वाभास होता है।

(i) **आश्रयासिद्ध हेत्वाभास-** जिस हेतु का आश्रय(पक्ष) प्रमाणसिद्ध न हो, वह आश्रयासिद्ध है- **'यस्य हेतोः आश्रयो नावगम्यते स आश्रयासिद्धः'**
यथा- गगनारविन्दं सुरभि अरविन्दत्वात्
आकाशकमल सुगन्धित होता है, क्योंकि वह कमल है, सरोवर में उत्पन्न कमल की तरह। यहाँ साध्य सुरभित्व का आश्रय गगनारविन्द की सत्ता ही नहीं है।

(ii) **स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास-** स्वरूपासिद्ध वह हेत्वाभास है जिसके पक्ष में हेतु का अभाव होता है। जैसे- **'शब्दो गुणः चाक्षुषत्वात् रूपवत्।'** शब्द गुण है, दिखाई पड़ने के कारण, रूप के समान।

- यहाँ 'चाक्षुषत्व' शब्द में नहीं है क्योंकि शब्द श्रवण से ग्राह्य है।

(iii) व्याप्यत्वासिद्ध हेत्वाभास- 'सोपाधिको हेतुर्व्याप्यत्वासिद्धः' उपाधियुक्त हेतु व्याप्यत्वासिद्ध होता है।

- यथा- 'पर्वतो धूमवान् वह्निमत्त्वात्'
  पर्वत धूमवान् है, वह्नियुक्त होने के कारण।
  सोपाधिक होने से वह्निमत्त्व व्याप्यत्वासिद्ध है।
- **उपाधि-** 'साध्यव्यापकत्वे सति साधन-अव्यापकत्वम् उपाधिः'
  साध्य के व्यापक होने पर साधन की अव्यापकता उपाधि है।

5. बाधित हेत्वाभास

- 'यस्य साध्याभावः प्रमाणान्तरेण निश्चितः सः बाधितः।'
  जिस हेतु के साध्य का अभाव किसी अन्य प्रमाण से निश्चित होता है वह बाधित हेत्वाभास है।
- यथा- वह्निरनुष्णो द्रव्यत्वात् इति।
  अग्नि शीतल है, द्रव्य होने के कारण।
  यहाँ 'अनुष्णत्व' (शीतलता) साध्य है उसका अभाव उष्णत्व स्पार्शनप्रत्यक्ष से ज्ञात होता है। इसलिए इसमें बाधित हेत्वाभास है।

उपमानप्रमाण

- **उपमान-** 'उपमितिकरणम् उपमानम्'
  उपमिति का करण उपमान है।
- **उपमिति-** 'संज्ञासंज्ञिसम्बन्धज्ञानम् उपमितिः'
  संज्ञा तथा संज्ञी के सम्बन्धज्ञान को उपमिति कहते हैं। उसका करण सादृश्यज्ञान है।
- **अवान्तरव्यापार-** 'अतिदेशवाक्यार्थस्मरणम् अवान्तरव्यापारः'
  प्रामाणिक व्यक्ति के कहे हुए वाक्यार्थ का स्मरण अवान्तर व्यापार है।
- **उपमिति की प्रक्रिया-** जैसे कोई गवय शब्द के अर्थ को बिना जानता हुआ किसी

जंगली पुरुष से गाय के सदृश गवय होता है (गो सदृशो गवयः) यह सुनकर वन में जाता हुआ वाक्य के अर्थ को स्मरण करते हुए गो सदृश पिण्ड को देखता है। तदनन्तर यह गवय शब्द से वाच्य है। यह उपमिति उत्पन्न होती है।

शब्दप्रमाण

- **शब्द-** 'आप्तवाक्यं शब्दः' आप्तपुरुषों का वाक्य शब्द प्रमाण है।
- **आप्त-** 'आप्तस्तु यथार्थवक्ता' आप्त तो यथार्थवक्ता है।
  वाक्य- 'वाक्यं पदसमूहः' वाक्य पदों का समूह है।
  जैसे- गाम् आनय (गाय लाओ)
- वाक्य से प्राप्त होने वाला अर्थ ही शाब्दबोध अथवा वाक्यार्थज्ञान कहलाता है।
  पद- 'शक्तं पदम्' शक्त अर्थात् शक्तियुक्त (सामर्थ्यवान्) पद है।
- **शक्ति-** 'अस्मात् पदात् अयमर्थो बोद्धव्यः इति ईश्वरसङ्केतः शक्तिः'
  इस पद से यह अर्थ जानना चाहिए- इस प्रकार का ईश्वरसङ्केत ही शक्ति है।
- 'अर्थस्मृत्यनुकूलः पदपदार्थसम्बन्धः शक्तिः'(दीपिका टीका)

वाक्यार्थज्ञान के हेतु-

- आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि- वाक्यार्थ ज्ञान के प्रति हेतु है।

आकांक्षा-

- 'पदस्य पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्तान्वयाननुभावकत्वम् आकाङ्क्षा'
  एक पद का दूसरे अर्थ के बिना प्रयुक्त होने पर शाब्दबोध करवाने की असमर्थता आकाङ्क्षा है।
- **योग्यता-** 'अर्थाबाधो योग्यता'
  अर्थ का बाधारहित होना योग्यता है।
- **सन्निधि-** 'पदानाम् अविलम्बेन उच्चारणं सन्निधिः'
  पदों का बिना विलम्ब के उच्चारण सन्निधि है।
- इसप्रकार आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि से रहित वाक्य प्रमाण नहीं है। यथा- गौः, अश्वः, पुरुषः, हस्ती- यह प्रमाण नहीं हैं, क्योंकि इसमें आकांक्षा का अभाव है।
- 'अग्निना सिञ्चेत्' इति न प्रमाणम्। क्योंकि इसमें योग्यता का अभाव है।
- एक-एक प्रहर में कहे गये 'गाम् आनय' इत्यादि पद प्रमाण नहीं हैं, क्योंकि इनमें सान्निध्य नहीं है।

वाक्य के दो प्रकार- तर्कसंग्रह के अनुसार वाक्य के दो प्रकार हैं- वैदिक और लौकिक

(i) वैदिक वाक्य- 'वैदिकमीश्वरोक्तत्वात् सर्वमेव प्रमाणम्'
ईश्वर वचन होने के कारण सारे वैदिक वाक्य प्रमाण हैं।

(ii) लौकिक वाक्य- लौकिक वाक्य तो आप्तकथित प्रमाण हैं, अन्य प्रमाण नहीं हैं।

'लौकिकं तु आप्तोक्तं प्रमाणम् अन्यद् अप्रमाणम्'

शाब्दज्ञान- वाक्यार्थज्ञानं शाब्दज्ञानम्।

वाक्य के अर्थों का ज्ञान ही शाब्दज्ञान है, उसका करण शब्द है।

भारतीय दर्शन का ख्यातिवाद

1. विज्ञानवादी बौद्ध – आत्मख्याति (विज्ञानख्यातिवाद)
2. शून्यवादी बौद्ध- असत्ख्याति (शून्यताख्यातिवाद)
3. प्राभाकरमीमांसक- अख्यातिवाद
4. कुमारिलभट्ट - विपरीतख्यातिवाद
5. नैयायिक – अन्यथाख्यातिवाद
6. वेदान्ती – अनिर्वचनीयख्यातिवाद (अध्यास)
7. प्राचीनसांख्य और रामानुज का- सत्ख्यातिवाद
8. उत्तरसांख्य और जैनमत का – सदसत्ख्यातिवाद

❑❑

6. वेदान्तसार

वेदान्त दर्शन की भूमिका

- वेदान्त वेद के सिद्धान्त है। वेद के चार भाग हैं- मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक, और उपनिषद्।
- सर्वप्रथम वेदान्त का प्रयोग उपनिषद् के अर्थ में हुआ।उपनिषद् वेद के अन्तिम भाग हैं, इसलिए उनको वेदान्त कहा जाता है।
- उपनिषद् को **अध्यात्मविद्या** या **ब्रह्मविद्या** भी कहते हैं।
- वेद के अन्तिम भाग होने से इसे वेदान्त भी कहा जाता है।
- **'वेदान्तो नाम उपनिषद्प्रमाणम्'** परिभाषा के अनुसार उपनिषदों को प्रमाणरूप में मानकर चलने वाला शास्त्र वेदान्तदर्शन माना गया है।
- इसे सर्वप्रथम व्यवस्थितरूप देने का श्रेय **आचार्य बादरायण** को जाता है। जिन्होंने ब्रह्मसूत्र नामक ग्रन्थ की संरचना की। विद्वानों ने इन्हें **वेदान्तदर्शन का संस्थापक** अथवा प्रणेता आचार्य भी कहा है।
- विद्वानों ने इनका समय 400 ई॰पू॰ के लगभग निर्धारित किया है।
- महर्षि बदर का वंशज होने के कारण इन्हें बादरायण नाम से जाना जाता है।

ब्रह्मसूत्र

- बादरायण वेदान्तदर्शन के प्रसिद्ध ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र की रचना की। इसमें 4 अध्याय, 16 पाद, 192 अधिकरण तथा 555 सूत्र हैं।
- ब्रह्मसूत्र को उत्तरमीमांसा, बादरायणसूत्र, ब्रह्ममीमांसा, वेदान्तसूत्र, व्याससूत्र तथा शारीरकसूत्र के नाम से भी जाना जाता है।
- इस ग्रन्थ में बृहदारण्यक, छान्दोग्य, कौषीतकि, ऐतरेय, मुण्डक, प्रश्न, श्वेताश्वतर आदि उपनिषद् ग्रन्थों में प्राप्त वाक्यों पर विचार किया गया है।

ब्रह्मसूत्र का वर्ण्य विषय

- ब्रह्मसूत्र के प्रथम अध्याय में स्पष्ट, अस्पष्ट एवं संदिग्ध श्रुतियों का ब्रह्म में समन्वय किया गया है।
- द्वितीय अध्याय में अन्य दार्शनिक मतों का दोष प्रदर्शन करके युक्तिपूर्वक वेदान्तमत की स्थापना की गई है।
- तृतीय अध्याय में जीव और ब्रह्म का लक्षण करते हुए उसे मुक्ति का बहिरङ्ग एवं अन्तरङ्ग साधन बताया गया है।

- चतुर्थ अध्याय में जीवन्मुक्ति, जीव की उत्क्रान्ति तथा सगुण -निर्गुण उपासना का दिग्दर्शन कराया गया है।

ब्रह्मसूत्र के विभिन्न भाष्य

भाष्यकार	भाष्य
शङ्कराचार्य	शारीरकभाष्य
रामानुजाचार्य	श्रीभाष्य
मध्वाचार्य	पूर्णप्रज्ञभाष्य
भास्कराचार्य	भास्करभाष्य
निम्बार्काचार्य	वेदान्तपारिजातभाष्य
श्रीकण्ठ	शैवभाष्य
वल्लभाचार्य	अणुभाष्य
विज्ञानभिक्षु	विज्ञानामृतभाष्य
आचार्य बलदेव	गोविन्दभाष्य

- **गौडपाद -** अद्वैतवेदान्त का प्रथम प्रवर्तक एवं प्रधान आचार्य गौडपाद को माना गया है।
- विद्वानों ने इन्हें ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी के पूर्वभाग में स्थित माना है।
- गौडपाद ने माण्डूक्योपनिषद् पर प्रसिद्ध कृति '**माण्डूक्यकारिका**' की रचना की।
- आचार्य गौडपाद अद्वैतवाद के प्रमुख आचार्य थे। अपनी कारिकाओं में उन्होंने जिन सिद्धान्तों को बीजरूप में प्रदर्शित किया, उन्हीं को आचार्य शङ्कर ने अपने ग्रन्थों में सरसशैली में प्रतिपादित किया।
- आचार्य गौडपाद के शिष्य तथा शङ्कराचार्य के गुरु आचार्य गोविन्दपाद थे, शङ्कराचार्य की जीवनी से इनका नर्मदातट निवासी होना सिद्ध होता है। ये अपने समय के उद्भट विद्वान् थे।

आचार्य शङ्कर

- शङ्कराचार्य **अद्वैतवाद के प्रवर्तक** आचार्य माने जाते हैं।
- अद्वैतमत को **शाङ्करमत** या **शाङ्करदर्शन** भी कहते हैं।
- ब्रह्मसूत्र पर उपलब्ध भाष्यों में सर्वाधिक प्राचीन शाङ्करभाष्य (शारीरिक भाष्य) माना जाता है।
- शङ्कराचार्य का जन्म केरल प्रदेश की पूर्णा नदी के तटवर्ती ग्राम कलाडी में वैशाख शुक्ल **5** को **788** ई॰ में हुआ। इनके पिता का नाम **शिवगुरु** और माता का नाम **सुभद्रा** मिलता है।
- भगवान् शङ्कर की आराधना से पुत्र प्राप्ति होने के कारण इनका नाम शङ्कर रखा गया। बालक शङ्कर बाल्यावस्था से ही अद्भुत प्रतिभा एवं स्मरण शक्ति के धनी थे अतः सात वर्ष की आयु तक इन्होंने वेद, वेदान्त और वेदाङ्गों का विधिवत् अध्ययन कर

लिया।

- शङ्कराचार्य के नाम से लगभग 272 ग्रन्थ लिखे गये बताए जाते हैं, किन्तु यह कहना कठिन है कि वे सभी आद्य शङ्कराचार्य द्वारा लिखे गये हैं।
- आचार्य शङ्कर ने **'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या'** एतदर्थ उन्होंने मायावाद की स्थापना की इसे विद्वानों ने अमोघमन्त्र बताया।
- शङ्कराचार्य के अनुसार सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् ब्रह्म का विवर्तमात्र है-
  जैसे हमें रज्जु में सर्प की भ्रान्ति हो जाती है, ठीक उसीप्रकार ब्रह्म तत्त्व में ही हमें जगत् की भ्रान्ति हो रही है। उन्होंने आत्मा को स्वतः सिद्ध माना।
- शंकर के परवर्ती वेदान्तदर्शन के आचार्यों की परम्परा अत्यन्त विशाल रही है। हम उनका संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं-
- **पद्मपादाचार्य**- शङ्कराचार्य के प्रथम शिष्य पद्मपादाचार्य थे। इनका पूर्वनाम **सइन्दन** था। दक्षिण के चोल प्रदेश मे इनका जन्म हुआ। पद्मपाद नाम इन्हें शङ्कराचार्य ने दिया। ये गुरु के परमभक्त एवं आज्ञापालक थे।
- **आचार्य मण्डनमिश्र-** इनका अन्य नाम सुरेश्वराचार्य भी था।ये रेवा नदी के तटवर्ती प्राचीन माहिष्मती के निवासी थे। मण्डन मिश्र अपने समय के मगध प्रदेश के सबसे बड़े विद्वान् और पूर्व मीमांसक थे।
- **आचार्य वाचस्पति मिश्र-** इनका जन्मस्थान मिथिला माना जाता है। इनके ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि ये अपने विषय के धुरन्धर विद्वान् तथा अद्वैतमत के प्रमुख आचार्य थे। विद्वानों ने इनका समय आठवीं शताब्दी के अन्त से लेकर नवम शती का प्रारम्भ माना है।इसके बाद के प्रायः सभी आचार्यों ने इनके वाक्यों को प्रमाणरूप में स्वीकार किया है। वाचस्पति मिश्र ने शाङ्करभाष्य पर **भामती टीका** का प्रणयन किया।
- **आचार्य सदानन्दयोगीन्द्र** ने अद्वैतवेदान्त पर अत्यन्त सरलशैली में **वेदान्तसार** नामक प्रकरणग्रन्थ की रचना की। इनका स्थितिकाल विद्वानों ने **सोलहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध** निर्धारित किया है। यह सम्पूर्ण वेदान्तसिद्धान्तों का परिचायक ग्रन्थ है।
- **वेदान्तपरिभाषा** नामक उत्कृष्ट एवं अद्वैतसिद्धान्त के लिये अत्यन्त उपयोगी प्रकरणग्रन्थ की रचना **आचार्य धर्मराज अध्वरीन्द्र** ने की। इनका जन्मसमय 17 वीं शताब्दी का आरम्भ माना गया है।
- शङ्कराचार्य के शिष्य सुरेश्वराचार्य के **नैष्कर्म्यसिद्धि** नामक ग्रन्थ से केवल इतना ज्ञात होता है कि आचार्य गौडपाद गोडप्रदेश के निवासी थे।
- वेदान्तदर्शन विशेषरूप से अद्वैतवेदान्त एकमात्र ब्रह्म को ही सत्य, नित्य और सर्वोपरि तत्त्व के रूप में मानता है।
- इसीकारण से वेदान्तदर्शन का प्रारम्भ ब्रह्मजिज्ञासा से होता है। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' (ब्रह्मसूत्र 1.1)
- ब्रह्म शब्द 'बृह् वृद्धौ' वृद्धि के अर्थ मे प्रयुक्त 'बृह्' धातु से मनिन् प्रत्यय करके 'ब्रह्म' शब्द

निष्पन्न हुआ हैं अर्थात् महान् ,व्यापक,निरवधिक,निरतिशय महत्त्व से युक्त तत्त्व ही ब्रह्म है।

- 'बृंहणाद् ब्रह्म' इस व्युत्पत्ति के अनुसार देश, काल तथा वस्तु आदि से अपरिछिन्न नित्य तत्त्व ही ब्रह्म है।

वेदान्तसार का मङ्गलाचरण

- वेदान्तसार के मङ्गलाचरण में ब्रह्म की वन्दना की गयी है।

अखण्डं सच्चिदानन्दमवाङ्मनसगोचरम्।
आत्मानमखिलाधारमाश्रयेऽभीष्टसिद्धये॥

- ग्रन्थ की निर्विघ्नसमाप्ति या त्रिविध दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति के लिये सत्य ज्ञान एवं आनन्द स्वरूप, मन वाणी तथा इन्द्रियों के अविषय, सम्पूर्ण स्थावरजङ्गम रूप प्रपञ्च के आधारस्वरूप, अखण्ड परमात्मा का अभीष्ट (मनोरथ) की सिद्धि के लिये आश्रय ग्रहण करता हूँ।
- किसी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व मंगलाचरण करने की भारतीय परम्परा रही है। आचार्य सदानन्द ने वेदान्तदर्शन के प्रकरणग्रन्थ वेदान्तसार की निर्विघ्नसमाप्ति के लिये सच्चिदानन्द, अवाङ्मनसगोचर,सम्पूर्णसृष्टि के आधार स्वरूप, अखण्ड परमपिता परमात्मा की वन्दना की है।
- वेदान्तदर्शन एकमात्र परमब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करता है साथ ही आत्मा एवं ब्रह्म की एकता का भी प्रतिपादन करता है।
- यहाँ आत्मा के चार विशेषणों का प्रयोग किया गया है (i) अखण्डम् (ii) सच्चिदानन्दम् (iii) अवाङ्मनसगोचरम् (iv) अखिलाधारम्
- 'सच्चिदानन्दम्'- वेदान्तग्रन्थों में ब्रह्म के लिए इस विशेषण का प्रयोग किया गया है जो ब्रह्म भी तीन विशेषताओं की ओर संकेत करता है - सत्, चित्, और आनन्द।
- मङ्गलाचरण में अपने आराध्य देवता के स्मरण के पश्चात् आचार्य सदानन्द ने अपने गुरु अद्वयानन्द को नमन किया है -

अर्थतोऽप्यद्वयानन्दानतीतद्वैतभानतः।
गुरूनाराध्य वेदान्तसारं वक्ष्ये यथामति॥

जिनकी द्वैतभावना दूर हो गई है, यथार्थरूप से भी अखण्ड आनन्दस्वरूप अद्वयानन्द नामक गुरु की आराधना करके मैं (सदानन्द अपनी) बुद्धि के अनुसार वेदान्तसार को कहूँगा।

- उपनिषद् को प्रमाण मानकर चलने वाला शास्त्र वेदान्त कहा गया है।
और ब्रह्मसूत्र शारीरकसूत्र आदि उनके उपकारक ग्रन्थ हैं।

'वेदान्तो नामोपनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि शारीरकसूत्रादीनि च।'

वेदान्तशास्त्र

उपनिषद्	ब्रह्मसूत्र (शारीरकसूत्र)
प्रमाणस्वरूप	उपकारक (व्याख्या ग्रन्थ)

- वेदान्तशास्त्र में चार अनुबन्ध हैं - अधिकारी, विषय, सम्बन्ध और प्रयोजन।
  'तत्रानुबन्धो नामाधिकारिविषयसम्बन्धप्रयोजनानि '
- **वेदान्त का प्रथम अनुबन्ध अधिकारी**- अधिकारी तो वह जिज्ञासु प्रमाता है, जिसने वेद- वेदाङ्गों का विधिपूर्वक अध्ययन करके समस्त वेदान्त के अर्थ को सामान्यरूप से जान लिया है तथा इस जन्म में अथवा अन्य जन्मों में कामनाओं को पूर्ण करने वाले काम्यकर्म तथा शास्त्रों द्वारा निषेध किये गये कर्मो को छोड़ने के साथ-साथ नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित्त और उपासना कर्मो के अनुष्ठान से सम्पूर्णपापों से मुक्त, अत्यधिक निर्मल अन्तःकरण वाला जो साधन चतुष्टयसम्पन्न है, ऐसा प्रमाता पुरुष (इस ब्रह्मविद्या) वेदान्त का अधिकारी है।
- अधिकारी तु विधिवदधीतवेदवेदाङ्गत्वेनापाततोऽधिगताखिलवेदार्थोऽस्मिन् जन्मनि जन्मान्तरे वा काम्यनिषिद्धवर्जनपुरस्सरं नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनानुष्ठानेन निर्गतनिखिलकल्मषतया नितान्तनिर्मलस्वान्तः साधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता।
  अधिकारी के निरूपणान्तर्गत ही काम्यादि कर्मों का वर्णन किया गया है-
- 1. स्वर्ग आदि कामनाओं के साधनस्वरूप ज्योतिष्टोमयाग आदि काम्यकर्म हैं
  काम्यानि स्वर्गादीष्टसाधनानि ज्योतिष्टोमादीनि।
- 2. नरकादि अनिष्टस्थानों की प्राप्ति के साधनभूत ब्राह्मणहत्या, गोहत्या आदि निषिद्धकर्म है। **निषिद्धानि नरकाद्यनिष्टसाधनानि ब्राह्मणहननादीनि।**
  3. जिसके न करने से भविष्य में दुःख की सम्भावना हो, ऐसे सन्ध्यावन्दन आदि नित्यकर्म हैं।
  'नित्यान्यकरणे प्रत्यवायसाधनानि सन्ध्यावन्दनादीनि'
  4. पुत्र जन्मादि के अवसर पर किये जाने वाले जातेष्टि यज्ञ आदि नैमित्तिक कर्म है **नैमित्तिकानि पुत्रजन्माद्यनुबन्धीनि जातेष्ट्यादीनि।**
  5. पाप के क्षय करने के लिये साधन बनने वाले चान्द्रायण आदि व्रत प्रायश्चित्त कर्म हैं। **प्रायश्चित्तानि पापक्षयसाधनानि चान्द्रायणादीनि।**
  6. सगुणब्रह्म को विषय बनाने वाला मानसिक व्यापार ध्यान ही जिनका स्वरूप है उन शाण्डिल्यविद्या आदि को उपासनाकर्म कहते हैं।
  उपासनानि सगुणब्रह्मविषयमानसव्यापाररूपाणि शाण्डिल्यविद्यादीनि।
- नित्य नैमित्तिक और प्रायश्चित्त कर्मों का परम प्रयोजन- बुद्धि की शुद्धि एवं उपासना रूप कर्मों का मुख्य प्रयोजन -चित्त की एकाग्रता है।
- नित्य नैमित्तिक प्रायश्चित्त कर्मों का गौण प्रयोजन- पितृलोक प्राप्ति तथा उपासना का

गौण प्रयोजन - सत्यलोक (देवलोक की प्राप्ति)।

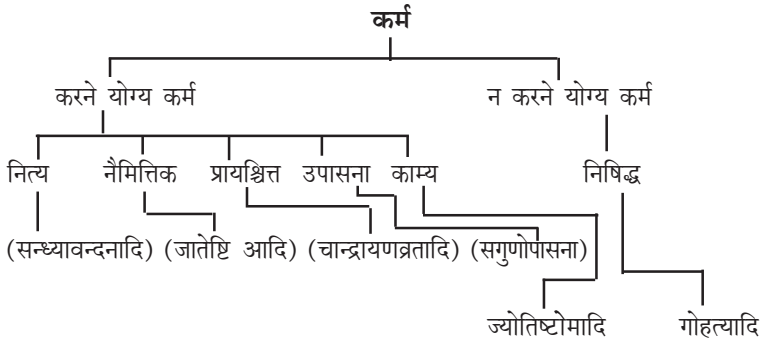

- **साधनचतुष्टय -** (i) नित्य एवं अनित्य वस्तुविवेक, (ii) इहलौकिक एवं पारलौकिक फल को भोगने के प्रति वैराग्य, (iii) शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा आदि छः प्रकार की सम्पत्ति तथा (iv) मोक्षप्राप्ति के प्रति इच्छा- ये चार साधन हैं।

  साधनानि नित्यानित्यवस्तुविवेकेहामुत्रार्थफलभोगविरागशमादिषट्कसम्पत्तिमुमुक्षुत्वानि

- इनमें एकमात्र ब्रह्म ही नित्य वस्तु है उसके अतिरिक्त अन्य सभी कुछ अनित्य है इसप्रकार समझना ही **नित्य-अनित्य-वस्तुविवेक** है।
- इस लोक की माला, चन्दन, सुन्दरी आदि भोग विलास विषयक सामग्री कर्म द्वारा उत्पन्न होने के कारण अनित्य के समान है। इसीप्रकार पारलौकिक स्वर्ग आदि विषयभोगों के कर्मजन्य होने से अनित्य होने के कारण उनके प्रति भी नितान्त वैराग्यभाव ही **'इहामुत्रार्थफलभोग विराग'** है।
- ऐहिकानां स्रक्चन्दनवनितादिविषयभोगानां कर्मजन्यतयाऽनित्यत्व-
  वदामुष्मिकाणामप्यमृतादिविषयभोगानामनित्यतया तेभ्यो नितरां विरतिरिहा
  मुत्रार्थफलभोगविरागः

साधनचतुष्टय

1. **नित्यानित्यवस्तुविवेक-** नित्य अनित्य वस्तु का विवेक।
2. **इहामुत्रार्थफलभोगविराग-** इस लोक एवं परलोक विषयक भोगने के प्रति वैराग्यभाव।
3. **शमादिषट्कसम्पत्ति-** शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा इन छः प्रकार की सम्पत्ति से सम्पन्न होना
4. **मुमुक्षुत्व-** मोक्ष की प्रबल इच्छा का होना।

शमादिषट्कसम्पत्ति

शमादयस्तु शमदमोपरतितितिक्षासमाधानश्रद्धाख्याः।

- **1. शम-** श्रवण मनन और निदिध्यासन को छोड़कर उनसे भिन्न विषयों से मन को हटा लेने को शम कहते हैं।

शमस्तावच्छ्रवणादिव्यतिरिक्तविषयेभ्यो मनसो निग्रहः।

- **2. दम-** श्रोत्रादि बाह्य इन्द्रियों को श्रवणादि के अतिरिक्त विषयों से हटाने को दम कहते हैं। **'दमो बाह्येन्द्रियाणां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यो निवर्तनम्'**
- **3. उपरति-** अन्तरिन्द्रिय मन और श्रोत्रादि बाह्य इन्द्रियों को अपने-अपने विषय से निवृत्त कर लेने पर श्रवण आदि के अतिरिक्त विषयों से इनका उपरत हो जाना अर्थात् फिर से विषयों की ओर प्रवृत्त होने का उत्साह न रह जाने से स्थिर हो जाना उपरति है। **निवर्तितानामेतेषां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्य उपरमणमुपरतिः अथवा विहितानां कर्मणां विधिना परित्यागः।**
- अथवा सन्ध्यावन्दन अग्निहोत्र आदि अवश्य करणीय वेदविहित कर्मों का श्रुति और स्मृति में बताई गई विधि से परित्याग कर देना अर्थात् संन्यास ग्रहण कर लेना ही उपरति है।

4. तितिक्षा- शीत-उष्ण, मान -अपमान, लाभ -हानि, जय- पराजय, निन्दा-स्तुति, हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वों को सहन करना तितिक्षा है।

'तितिक्षा शीतोष्णादिद्वन्द्वसहिष्णुता'

- **5. समाधान-** निगृहीत चित्त का श्रवणादि में तथा श्रवणादि के अनुकूल गुरुशुश्रूषा, वेदान्तग्रन्थों का सम्पादन और उनकी रक्षा करना आदि विषयों में स्थिर हो जाना समाधान है। **'निगृहीतस्य मनसः श्रवणादौ तदनुगुणविषये च समाधिः समाधानम्'**
- **6. श्रद्धा -** गुरू द्वारा उपदिष्ट वेदान्त के वाक्यों में विश्वास श्रद्धा है।

गुरूपदिष्टवेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा।

- **मुमुक्षुत्व -** मोक्ष की इच्छा ही मुमुक्षुत्व है। **मुमुक्षुत्वम् मोक्षेच्छा**

एवम्भूतः प्रमाताधिकारी। इसप्रकार की विशेषताओं से युक्त हुआ प्रमाता अधिकारी है।

शमादिषट्कसम्पत्ति

शम दम उपरति तितिक्षा समाधान श्रद्धा

- **वेदान्त का द्वितीय अनुबन्ध- विषय** वेदान्त का प्रतिपाद्य विषय -जीव और ब्रह्म की एकता है। विषयो जीवब्रह्मैक्यं शुद्धचैतन्यं प्रमेयं तत्रैव वेदान्तानां तात्पर्यात्।
- शुद्धचैतन्य प्रमा का विषय है, क्योंकि समस्त वेदान्तवाक्यों का अभिप्राय उसी शुद्धचैतन्य के प्रतिपादन में निहित है।
- **वेदान्त का तृतीय अनुबन्ध-सम्बन्ध**

ज्ञान के विषय उन जीव और ब्रह्म का ऐक्य एवं उनका प्रतिपादन करने वाले उपनिषद्रूप प्रमाणवाक्यों का परस्पर बोध्य-बोधकभाव सम्बन्ध है।

सम्बन्धस्तु तदैक्यप्रमेयस्य तत्प्रतिपादकोपनिषत्प्रमाणस्य च बोध्यबोधकभावः।

- **वेदान्त का चतुर्थ अनुबन्ध-प्रयोजन** चतुर्थ अनुबन्ध उस जीव एवं ब्रह्म के ऐक्यविषयक ज्ञान के साथ अज्ञान की निवृत्तिपूर्वक अपने स्वरूप का परिचय होने से चरम आनन्द की प्राप्ति ही मुख्य प्रयोजन है।

  * प्रयोजनं तु तदैक्यप्रमेयगताज्ञाननिवृत्तिः स्वस्वरूपानन्दावाप्तिश्च।

  * ''तरति शोकमात्मवित्'' इत्यादि श्रुतेः ''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति '' इत्यादि श्रुतेश्च। ''आत्मज्ञानी शोक से तर जाता है'' इत्यादि तथा ''ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म ही हो जाता है'' इत्यादि श्रुति का कथन प्रमाण है।

अनुबन्ध चतुष्टय

अधिकारी | विषय | सम्बन्ध | प्रयोजन

- **अध्यारोप -** रस्सी में सर्प के आरोप के समान, वस्तु में अवस्तु का आरोप ही अध्यारोप है। **'असर्पभूतायां रज्जौ सर्पारोपवद्वस्तुन्यवस्त्वारोपोऽध्यारोपः'**
- **वस्तु और अवस्तु-** सच्चिदानन्द, अनन्त और अद्वैत ब्रह्म वस्तु है तथा अज्ञान आदि से लेकर सम्पूर्ण जडप्रपञ्च अवस्तु है।

  वस्तु सच्चिदानन्दानन्ताद्वयं ब्रह्म अज्ञानादिसकलजडसमूहोऽवस्तु।
- वेदान्तदर्शन के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र वस्तु है तथा शेष सम्पूर्ण चराचरप्रपञ्च को अवस्तु बताया गया है।
- जिसप्रकार वस्तु (रस्सी) में अवस्तु (सर्प) का आरोप ही अध्यारोप है, उसी प्रकार वस्तु (ब्रह्म) में अवस्तु (जगत्) का आरोप ही अध्यारोप है।
- **अज्ञान-** अज्ञान तो सत् और असत् दोनों से विलक्षण होने से अनिर्वचनीय,त्रिगुणात्मक, ज्ञान का विरोधी तथा भाव रूप से 'यत्किञ्चित्' ऐसा कहते हैं।

  अज्ञानं तु सदसद्भ्यामनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किञ्चिदिति।
- **अज्ञान के भेद-** अज्ञान के दो भेद हैं - समष्टि और व्यष्टि
- **समष्टि -** यह अज्ञान समष्टि के अभिप्राय से एक है और व्यष्टि के अभिप्राय से अनेक कहा जाता है। जैसे- समष्टि (समूह) के अभिप्राय से यह वन है इसप्रकार एकत्व का कथन किया जाता है, या जल बिन्दुओं की समष्टि के अभिप्राय से यह जलाशय है, इसप्रकार एकत्व का कथन किया जाता है।
- 'समष्टि' शब्द का प्रयोग यहाँ समुदाय, समूह या संघात अर्थ की अभिव्यक्ति के लिये हुआ है।
- **व्यष्टि-** यह एक का सूचक है। व्यष्टि का अभिप्राय वृक्ष है। इसीप्रकार एक जीव में स्थित अज्ञान का कथन उसके व्यष्टिरूप को प्रकट करता है।

इदमज्ञानं समष्टिव्यष्टाभिप्रायेणैकमनेकमिति च व्यवह्रियते।
तथाहि वृक्षाणां समष्ट्यभिप्रायेण वनमित्येकत्वव्यपदेशो यथा वा जलानां समष्ट्यभिप्रायेण जलाशय इति।

- समष्टि - सम् + ✓अश् (व्याप्तौ संघाते च) +क्तिन् = सभी को व्याप्त करने वाला।
- व्यष्टि - वि + ✓अश् (व्याप्तौ संघाते च) + क्तिन् = सीमित स्थान में रहने वाला।
- वेदान्तदर्शन में समष्टि का अर्थ 'माया' तथा व्यष्टि के लिए 'अविद्या' शब्द का प्रयोग किया गया है।

''सत्त्वशुद्ध्यविशुद्धिभ्यां मायाविद्ये च ते मते '' (पञ्चदशी 1/16)

- अज्ञान की यह समष्टि (माया) उत्कृष्ट (ईश्वर) उपाधि होने के कारण विशुद्धसत्त्व प्रधान से युक्त होती है। इससे उपहित हुआ चैतन्य समस्त अज्ञानराशि का प्रकाशक होने से सर्वज्ञता, सर्वेश्वरता, सर्वनियामकता आदि गुणों से युक्त, अव्यक्त, अन्तर्यामी, जगत् का कारण और ईश्वर कहा जाता है। ''यः सर्वज्ञः सर्ववित् '' इति श्रुतेः। 'जो सर्वज्ञाता सर्ववित् है' इत्यादि श्रुति प्रमाण है।
- वेदान्त के सृष्टिक्रम में ब्रह्म के पश्चात् ईश्वर का स्थान है। ईश्वर को जगत् का कारण होने से कारण शरीर, आनन्द की प्रचुरता के कारण आनन्दमयकोष, सभी कुछ विलीन होने के कारण सुषुप्ति एवं लयस्थान कहा गया है।
- इयं व्यष्टिर्निकृष्टोपाधितया मलिनसत्त्वप्रधाना।एतदुपहित चैतन्यमल्पज्ञत्वानीश्वरत्वादि गुणकं प्राज्ञ इत्युच्यत एकाज्ञानावभासकत्वात्।
- व्यष्टि निकृष्ट उपाधि से युक्त होने के कारण मलिनसत्त्वप्रधान होती है। इस उपाधि से युक्त चैतन्य अल्पज्ञता एवं अशक्तता आदि गुणों वाला होने से, व्यष्टिगत एक ही अज्ञान का प्रकाशक होने के कारण 'प्राज्ञ' कहा गया है।
- इस (जीव) की व्यष्टिरूप उपाधि, अहङ्कार आदि का कारणरूप होने से कारण शरीर तथा आनन्द की प्रचुरता एवं चैतन्य को कोश के समान ढक लेने के कारण आनन्दमयकोश।

शरीर	अभिमानी	कोष	अवस्था
स्थूल	समष्टि - वैश्वानर व्यष्टि - विश्व	अन्नमय मनोमय	जाग्रत
सूक्ष्म	समष्टि - सूत्रात्मा व्यष्टि - तैजस्	प्राणमय विज्ञानमय	स्वप्न
कारण	समष्टि - ईश्वर व्यष्टि - प्राज्ञ	आनन्दमय	सुषुप्ति

- सबका उपरम (विलयन) होने से सुषुप्ति एवं स्थूल तथा सूक्ष्मशरीर आदि प्रपञ्च के विलय की अधिकता होने के कारण 'लयस्थान' भी कहलाती है।

- समष्टिरूप अज्ञान से उपहित चैतन्य की 'ईश्वर' संज्ञा है।
- व्यष्टिरूप अज्ञानों से उपहित चैतन्य की जीव अथवा 'प्राज्ञ' संज्ञा है।
- प्राज्ञ को ही सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, अन्तर्यामी, सभी जीवों की उत्पत्ति एवं प्रलय के स्थान का कारण बताया गया है।
  ''एष सर्वेश्वरः, एषः सर्वज्ञः एषः अन्तर्यामि, एष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्।''
- समष्टिव्यष्टिगत इन दोनों अज्ञानों एवं इनकी उपाधियों से युक्त ईश्वर और प्राज्ञ दोनों चैतन्यों का आधार उपाधिरहित शुद्धचैतन्य है।
- वही 'तुरीय' इस नाम से भी कहा जाता है। अद्वैतब्रह्म को ही चतुर्थ मानते है।

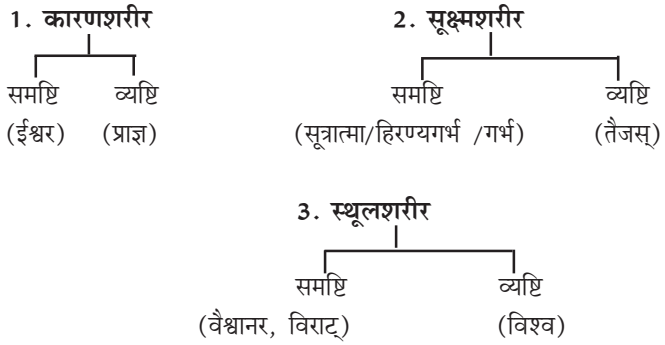

अज्ञान की शक्ति -

- अज्ञान की दो शक्तियाँ हैं - आवरण और विक्षेप।
  अस्याज्ञानस्यावरणविक्षेपनामकमस्तिशक्तिद्वयम्।
- प्रमाता के सच्चिदानन्द स्वरूप को जो शक्ति ढक देती है, वह आवरण शक्ति है।
- सम्पूर्ण नामरूपात्मक जगत् को उत्पन्न करने वाली शक्ति है - विक्षेप शक्ति।
- तमोगुण प्रधान होती है- विक्षेप शक्ति।
- वेदान्त की दृष्टि में आत्मा का बन्धन अथवा मोक्ष सम्भव नहीं है यह तो केवल आभासमात्र है। रस्सी में सर्प के समान अथवा सीप में चाँदी के समान।
  हस्तामलक नामक ग्रन्थ में आयी हुई कारिका -
  ''घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नमर्कं यथा मन्यते निष्प्रभं चातिमूढः।
  तथा बद्धवद्भाति यो मूढदृष्टेः स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा।।''
  जिस प्रकार मेघ से ढका हुआ दृष्टि वाला मूर्ख व्यक्ति, बादल से ढके हुए सूर्य को प्रकाशरहित मानता है उसीप्रकार मूढ सामान्य दृष्टि वालों को आत्मा (जन्म - मरणादि बन्धनों से) बँधा हुआ सा प्रतीत होता है।

अज्ञान माया की शक्ति

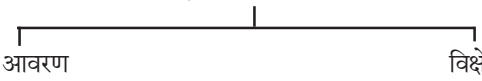

(सत्य को आवृत करना) (सत् में असत् की उद्भावना)

आवरण एवं विक्षेप नामक दो महत्त्वपूर्ण शक्तियों से युक्त अज्ञान से उपहित चैतन्य सूक्ष्मशरीर से लेकर ब्रह्माण्डपर्यन्त दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् प्रपञ्च का उपादान और निमित्त दोनों है।

- शक्तिद्वयवदज्ञानोपहितं चैतन्यं स्वप्रधानतया निमित्तं स्वोपाधिप्रधानतयोपादानं च भवति।यथा-लूता तन्तुकार्यं प्रति स्वप्रधानतया निमित्तं स्वशरीरप्रधानतयोपादानं च भवति।
- जिसप्रकार मकड़ी अपने जाला निर्माणरूप कार्य के प्रति अपने शरीर के चैतन्य की प्रधानता के कारण निमित्तकारण है तथा अपने शरीर से निकलने वाले लारवे की प्रधानता की दृष्टि से उपादानकारण भी है।
- उसीप्रकार अज्ञान से उपहित आत्मा अपने चैतन्य की प्रधानता होने से दृश्यमान सांसारिक प्रपञ्च का निमित्तकारण तथा अज्ञान की प्रधानता के समय उपादान कारण होता है।
- अज्ञानोपहित चैतन्य के लिए वेदान्त में ईश्वर, चैतन्य एवं आत्मा आदि अनेक शब्दों का प्रयोग मिलता है।
- लूता मकड़ी का नाम है। मकड़ी की विशेषता यह है कि अपने द्वारा निर्मित जाले मे अन्य किसी बाह्य उपादान का सहयोग नहीं लेती है।

सूक्ष्मशरीर (17 अवयव)

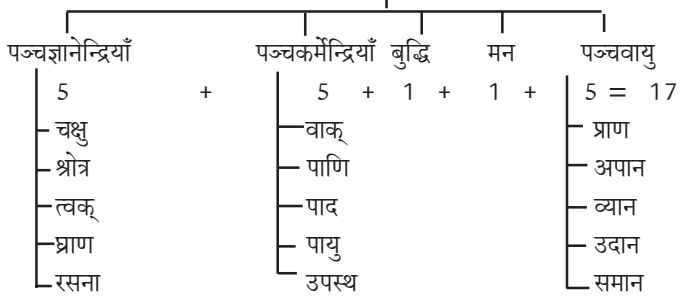

अपञ्चीकृत सूक्ष्मशरीर (सात्त्विक अंशों से ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति)

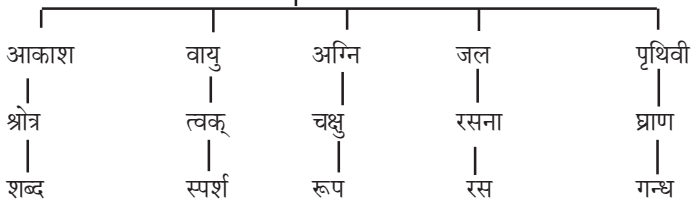

मकड़ी लूता — उपादान कारण (स्वशरीरप्रधानतया)
निमित्त कारण - (चैतन्यस्वप्रधानतया)

- तमोगुण की प्रधानता वाली विक्षेपशक्ति से युक्त अज्ञान से उपहित चैतन्य से सर्वप्रथम आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, और जल से पृथ्वी उत्पन्न होती है।
- तमःप्रधानविक्षेपशक्तिमदज्ञानोपहितचैतन्यादाकाश आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेऽपोद्भ्यः पृथिवी चोत्पद्यते।

सूक्ष्मशरीर -

- पञ्चीकृत महाभूतों से स्थूलशरीर उत्पन्न होते हैं।
  लिङ्ग्यते ज्ञाप्यते प्रत्यगात्मसद्भावः एभिरिति लिङ्गानि,
- सूक्ष्मशरीर को लिङ्गशरीर भी कहते हैं 'लिङ्गानि च तानि शरीराणि इति लिङ्गशरीराणि'।
- सूक्ष्मशरीर में **सत्रह अवयव** होते हैं।
  सूक्ष्मशरीराणि सप्तदशावयवानि लिङ्गशरीराणि। अवयवास्तु ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं बुद्धिमनसी कर्मेन्द्रियपञ्चकं वायुपञ्चकं चेति।
  पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ +बुद्धि +मन +पञ्चकर्मेन्द्रियाँ + पञ्चवायु ही सूक्ष्मशरीर के सत्रह अवयव हैं।
- श्रोत्र,त्वक्, चक्षुः, जिह्वा, घ्राण=**पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ** है, यह आकाशादि सूक्ष्मभूतों के सात्त्विक अशों से क्रमशः अलग-अलग उत्पन्न होते हैं।
- **बुद्धि-** निश्चय करने वाली अन्तःकरण की वृत्ति ही बुद्धि है।
  बुद्धिर्नाम निश्चयात्मिकान्तः करणवृत्तिः।
- **मन-** संकल्प - विकल्प करने वाली अन्तःकरण की वृत्ति मन है।
  मनो नाम संकल्पविकल्पात्मिकान्तःकरणवृत्तिः।
- इन दोनों में ही चित्त और अहङ्कार का अन्तर्भाव हो जाता है ये सभी वस्तु आकाशादि में स्थित सात्त्विक अंशों के मिश्रित अंशों से उत्पन्न होते है।
- पञ्चज्ञानेन्द्रियों सहित यह बुद्धि ही **विज्ञानमयकोश** कहलाती है।
- पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, बुद्धि एवं मन ये सात अपञ्चीकृत पञ्चभूतों के सात्त्विक अंशों से उत्पत्र होते है।
- पञ्चज्ञानेन्द्रियों के साथ मन के मिलने पर '**मनोमयकोश**' का निर्माण होता है। इन्हें आत्मा को ढँकने के कारण **कोशसंज्ञा** भी कहते हैं।
- पञ्चदशीकार ने भी सूक्ष्मशरीर को सत्रह अवयव से युक्त बताया है।
  बुद्धिः कर्मेन्द्रियप्राणपञ्चकैर्मनसा धिया।
  शरीरं सप्तदशभिः सूक्ष्मं तल्लिङ्गमुच्यते॥
  कुछ विद्वान् चित्त और अहङ्कार को भी परिभाषित करते हैं-
- **चित्त-** अनुसंधानात्मिकान्तकरणवृत्तिः चित्तम्।
- **अहङ्कार-** अभिमानात्मिकान्तःकरणवृत्तिरहङ्कारः।

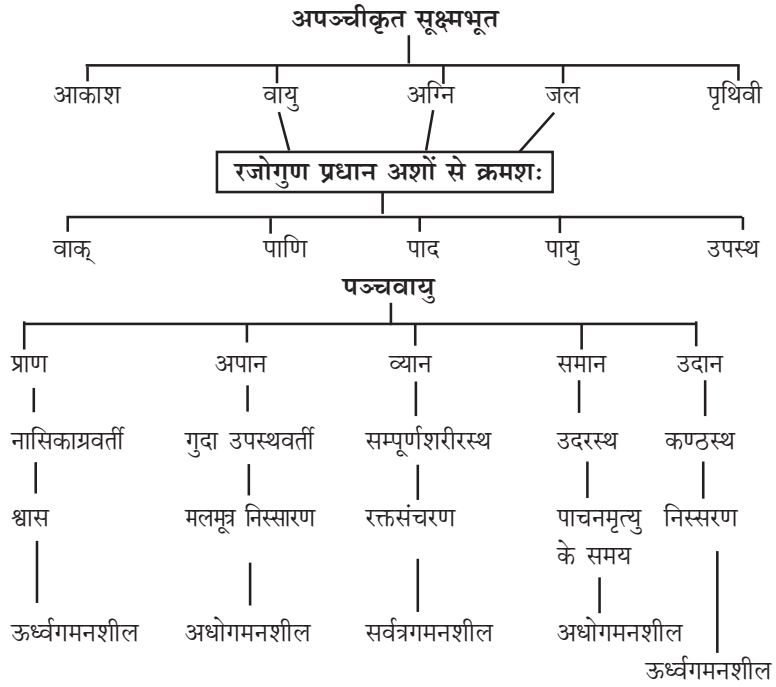

पञ्चकोश

1. अन्नमयकोश 2. प्राणमयकोश 3. मनोमयकोश 4. विज्ञानमयकोश
5. आनन्दमयकोश

➢ कारण शरीर के निर्माण में विज्ञानमय, मनोमय तथा प्राणमय इन कोषत्रय की महती भूमिका रहती है।

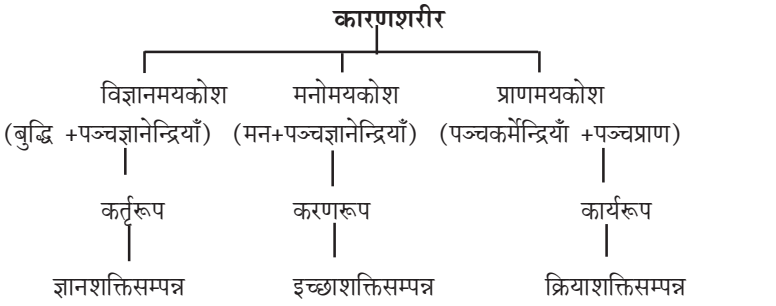

➢ एतेषु कोशेषु मध्ये विज्ञानमयो ज्ञानशक्तिमान् कर्तृरूपः ---- ज्ञानशक्ति से युक्त विज्ञानमयकोश कर्तारूप है।

➢ इच्छाशक्ति से युक्त मनोमयकोश करणरूप है। मनोमय इच्छाशक्तिमान् करणरूपः।

- क्रियाशक्ति से युक्त प्राणमयकोश कार्यरूप है। प्राणमयः क्रियाशक्तिमान् कार्यरूपः
- ये तीनों कोश मिलकर सूक्ष्मशरीर कहे जाते हैं। **एतत्कोशत्रयं मिलितं सत्सूक्ष्मशरीरमित्युच्यते।**
- समष्टि से उपहित चैतन्य सर्वत्र व्याप्त होने से तथा ज्ञान, इच्छा एवं क्रियाशक्ति से सम्पन्न होने के कारण क्रमशः सूत्रात्मा,हिरण्यगर्भ और प्राण कहा जाता है।
- व्यष्टिरूप उपाधि से युक्त यह चैतन्य, तेजोयुक्त अन्तःकरण उपाधि से युक्त होने से तैजस् होता है।

पञ्चीकरण - ''द्विधा विधाय चैकैकं चतुर्धा प्रथमं पुनः।
स्वस्वेतरद्वितीयांशैर्योजनात्पञ्चपञ्च ते।।

- पञ्चीकृत (महाभूतों) को ही **स्थूलभूत** कहते हैं।
  सर्वप्रथम प्रत्येक सूक्ष्मभूत को समान दो भागों में विभाजित करके, तत्पश्चात् प्रथम पाँच में से प्रत्येक को चार भागों में विभक्त करके, अपने अपने अंश को छोड़कर अन्य भूतों के अर्धांश के साथ जोड़ने से वे पाँच सूक्ष्मभूत स्थूलभूत हो जाते हैं।

पञ्चीकरण प्रक्रिया					
	आकाश	वायु	अग्नि	जल	पृथिवी
	1/2	1/2	1/2	1/2	1/2
1/8	वायु	आकाश	आकाश	आकाश	आकाश
1/8	अग्नि	अग्नि	वायु	वायु	वायु
1/8	जल	जल	जल	अग्नि	अग्नि
1/8	पृथिवी	पृथिवी	पृथिवी	पृथिवी	जल

पञ्चीकृत पञ्चमहाभूत

- 'छान्दोग्योपनिषद्' (6.3.3) में सर्वप्रथम अग्नि की उत्पत्ति कही गई है तथा उसके बाद अग्नि से जल एवं जल से पृथिवी की उत्पत्ति का कथन करके, उनके त्रिवृत्करण द्वारा स्थूलसृष्टि की उत्पत्ति बतायी गयी है।
- त्रिवृत्करण के अनुसार अग्नि, जल और पृथिवी इन तीनों को सर्वप्रथम दो बराबर भागों में विभाजित किया जाता है। पुनः प्रथम तीन अर्धांशों को फिर से दो भागों में विभाजित करके उनका एक-एक भाग पूर्व के अर्धांश में जोड़ दिया जाता है। जिससे त्रिवृत् भूत का निर्माण होता है।
- पञ्चीकृत महाभूतों में भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् इत्यादि नाम वाले ऊपर-ऊपर विद्यमान लोकों की और अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल नामक अधोवर्ती भुवनों की, ब्रह्माण्ड की तथा उसमें विद्यमान चार प्रकार के स्थूलशरीरों की एवं उनके योग्य अन्नपान आदि की उत्पत्ति होती है।
- स्थूलशरीर चार प्रकार का होता है- 1. जरायुज 2. अण्डज 3. उद्भिज 4. स्वेदज

- जरायु से उत्पन्न होने वाले मनुष्य पशु आदि जरायुज नामक स्थूल शरीर हैं।
- अण्डों से उत्पन्न होने वाले- पक्षी, सर्प आदि अण्डज हैं।
- पृथ्वी को भेदकर उत्पन्न होने वाले- लता, वृक्ष आदि उद्भिज्ज हैं, तथा पसीने से पैदा होने वाले जू, मच्छर आदि स्वेदज नामक स्थूलशरीर हैं।
- चतुर्विधसकलस्थूलशरीरमेकानेकबुद्धिविषयतया वनवज्जलाशयवद्वा समष्टिर्वृक्षवज्जलवद्वा व्यष्टिरपि भवति।

स्थूलशरीर
- जरायुज - (मनुष्य, पशु आदि)
- अण्डज - (पक्षी, सर्प आदि)
- उद्भिज - (तृण, वृक्ष आदि)
- स्वेदज - (यूका , मच्छर आदि)

स्थूलशरीरों की

समष्टि — व्यष्टि

वैश्वानर (विराट्) —— अभेद (अधिष्ठातृ देवता) —— (अभेद विश्व)

	इन्द्रियाँ	देवता	विषय	
1. पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ -	**इन्द्रियाँ**	**देवता**	**विषय**	
	1.श्रोत्र -	दिक् -	शब्द	ग्रहण करना
	2. त्वक् -	वायु -	स्पर्श	
	3. चक्षु -	सूर्य -	रूप	
	4.रसना -	वरुण -	रस	
	5.घ्राण -	अश्विन् -	गन्ध	
2. पञ्चकर्मेन्द्रियाँ	**-इन्द्रिय**	**देवता**	**विषय**	
	1.वाक्	अग्नि	बोलना	क्रियायें सम्पादित करना
	2.पाणि	इन्द्र	आदान प्रदान	
	3.पाद	उपेन्द्र	चलना	
	4.पायु	यम	विसर्जन	
	5.उपस्थ	प्रजापति	आनन्द	
3. अन्तरिन्द्रियाँ -	**इन्द्रिय**	**देवता**	**विषय**	
	1.मन	चन्द्र	संकल्प- विकल्प	
	2.बुद्धि	ब्रह्म	निश्चय	करना
	3.अहङ्कार	शिव	गर्व	
	4.चित्त	विष्णु	स्मरण	

- कारणशरीर, समष्टि एवं व्यष्टि की दृष्टि से जिसमें स्थित चैतन्य ईश्वर एवं प्राज्ञ कहलाता है।
- सूक्ष्मशरीर, समष्टि एवं व्यष्टि की दृष्टि से जिसमें स्थित चैतन्य क्रमशः हिरण्यगर्भ (सूत्रात्मा) या तैजस् कहा जाता है।
- स्थूलशरीर, जिसमें स्थित चैतन्य समष्टि एवं व्यष्टि से क्रमशः वैश्वानर (विराट्) एवं विश्व कहलाता है।
- महाप्रपञ्च तथा उससे उपहित चैतन्य से अभिन्न होकर परमशुद्ध चैतन्य 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस महावाक्य का वाच्यार्थ होता है तथा वही अलग- अलग होने की स्थिति में लक्ष्यार्थ भी होता है।
- जिस प्रकार एक लोहे के गोले को अग्नि में डालने पर वह तपकर लाल हो जाता है तथा उससे जलने पर मैं लोहे से जल गया इसप्रकार कहा जाता है जबकि शक्ति लोहे में न होकर अग्नि में होती है।

अपवाद - अपवादो नाम रज्जुविवर्तस्य सर्पस्य रज्जुमात्रत्ववद्वस्तु विवर्तस्यावस्तुनोऽज्ञानादेः प्रपञ्चस्य वस्तुमात्रत्वम्।

- रस्सी में भ्रान्तिवश प्रतीत होने वाले सर्प की पुनः रस्सीमात्र के रूप में प्रतीति के समान ब्रह्मरूप वस्तु में मिथ्याप्रतीति के कारण अवस्तुरूप अज्ञानादिप्रपञ्च में, पुनः ब्रह्मरूप सत्यवस्तु का भान होना ही वस्तुतः अपवाद है।

''सतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदीरितः।
अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त इत्युदीरितः॥

- अपने मूलरूप का परित्याग करके अन्यरूप को ग्रहण करना ही विकार कहा गया है अपने रूप को बिना छोडे अन्य वस्तु की मिथ्याप्रतीति विवर्त कहलाता है।
- जैसे - दूध का दही के रूप में परिवर्तित होना 'विकार' है, क्योंकि दही बनने के बाद उसे पुनः दूध के रूप में बनाना असम्भव है। अपने रूप का त्याग करके ही दूध दही बनता है। इसी प्रक्रिया को विकार या परिणाम भी कहा जाता है।
- **सुख - दुःखरूप** भोग का स्थान रूप ये उत्पन्न हुए सभी चार प्रकार के स्थूलशरीर, भोग्यरूप अन्न पान आदि इसके आयतनभूत भूः, भुवः, स्वः आदि चौदहलोक एवं उन भुवनों का आधारभूत ब्रह्माण्ड यह सब अपने कारण रूप पञ्चीकृत महाभूतों में (विलीन) हो जाता है।

एतद्भोगायतनं चतुर्विधसकलस्थूलशरीरजातं रूपद् भोग्यरूपान्नपानादि-कमेतदायतनभूतभूरादिचतुर्दशभुवनान्येतदायतनभूतं ब्रह्माण्डं चैतत्सर्वमेतेषां कारणरूपं पञ्चीकृतभूतमात्रं भवति।

तत्त्वमसि महावाक्यार्थ-

- अज्ञान आदि व्यष्टि इसकी उपाधि अल्पज्ञत्व आदि विशेषताओं से युक्त चैतन्य (अर्थात् जीव) इसकी उपाधि से रहित शुद्धचैतन्य ये तीनों (एक साथ) तप्तलोहपिण्ड के समान अभिन्न प्रतीत होने के कारण 'त्वम्' पद के वाच्यार्थ होते हैं।

- इस उपाधि से युक्त आधारभूत अनुपहित आनन्दरूप तुरीयचैतन्य 'त्वम्'पद का लक्ष्यार्थ होता हैं।
- अनुपहित शुद्धचैतन्य 'तत्' एवं 'त्वम्' इन दोनों पदों का लक्ष्यार्थ है इसीलिए 'तत्' एवं 'त्वम्' ये दोनों पद यहाँ लक्षण है तथा शुद्धचैतन्य लक्ष्य है।
- 'तत्त्वमसि' (वह तू है) इत्यादि वाक्य तीन सम्बन्धों से अखण्ड अर्थ का बोध कराने वाला होता है।
- समानाधिकरण्य, विशेषणविशेष्यभाव एवं लक्ष्यलक्षणभाव ये तीन सम्बन्ध होते हैं।
- **चार महावाक्यों** की विशेषचर्चा वेदान्तदर्शन में की गई है-

महावाक्य	**उपनिषद्**	**वेद**
1. प्रज्ञानं ब्रह्म	ऐतरेयोपनिषद् -5	ऋग्वेद
2. तत्त्वमसि	छान्दोग्योपनिषद् -6.8.	सामवेद
3. अहं ब्रह्मास्मि	बृहदारण्यकोपनिषद् 1.4.10	यजुर्वेद
4. अयमात्मा ब्रह्म	माण्डूक्योपनिषद् -2	अथर्ववेद

- महावाक्यों का वर्ण्यविषय ब्रह्म के स्वरूप एवं अद्वैत का प्रतिपादन करना है।
- 'तत्त्वमसि' महावाक्य वस्तुतः उपदेशवाक्य है। जो एक गुरू द्वारा अधिकारी प्रमाता को उपदेश रूप में दिया जाता है 'तत्त्वमसि' - यह ब्रह्म और जीव की एकता बताता है।
- यहाँ लक्ष्यलक्षणसम्बन्ध को **'भागलक्षणा'** भी कहा गया है।

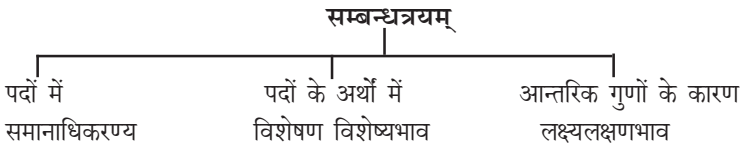

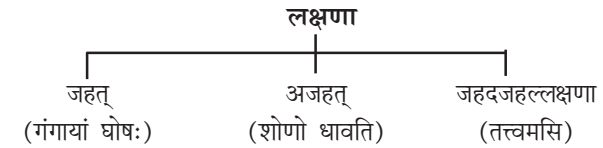

- 'अहं ब्रह्मास्मि' **अनुभववाक्य** है। 'तत्त्वमसि' **उपदेशवाक्य** है।
- 'अहं ब्रह्मास्मि' में ब्रह्माकाराकारिचित्तवृत्ति तथा तद्गत चिदाभास दोनों की आवश्यकता होती है'ब्रह्मास्मीत्यखण्डाकाराकारिता चित्तवृत्तिरुदेति।'
- वेदान्त की दृष्टि में अधिकारी को गुरु अध्यारोप एवं अपवादन्याय से 'तत्त्वमसि' महावाक्य के तत् एवं त्वम् पदों के अर्थों को भली प्रकार समझाकर उसके बाद अखण्ड अर्थ का बोध कराता है। जिसके परिणामस्वरूप उसके हृदय में अखण्ड आकार से आकारित इस प्रकार की चित्तवृत्ति का उदय होता है कि मैं ही नित्य, शुद्ध,बुद्ध, मुक्त,

सत्यस्वभाव, परमानद स्वरूप, अनन्त एवं अद्वैतब्रह्म हूँ।

➢ जीव और ब्रह्म का यह अखण्डार्थवाक्य का बोध कराता है।

लक्षणा-

1. जहद्लक्षणा 2. अजहल्लक्षणा 3.जहदजहल्लक्षणा

1. **जहद्लक्षणा-** इसे लक्षणलक्षणा भी कहते हैं। जो अपने मूल अर्थ को त्याग दें और दूसरा अर्थ ग्रहण करें।
2. **अजहल्लक्षणा-** जो अपने अर्थ को न छोड़े वह उपादान लक्षणा या अजहल्लक्षणा होती है।
3. **जहदजहल्लक्षणा-** जो अपने मूल अर्थ को त्याग दें और एक अंश का बोध कराये वह जहदजहल्लक्षणा है। इसे **भागलक्षणा** भी कहते हैं।

➢ तत्त्वमसि वाक्य का बोध जहदजहल्लक्षणा या भागलक्षणा से होता है।

षड्लिङ्ग

1.उपक्रम 2.उपसंहार 3.अभ्यास 4.अपूर्वता 5.फल 6.अर्थवाद

आत्मदर्शन के उपाय

श्रवण मनन निदिध्यासन समाधि- अनुष्ठान

➢ श्रवण मनन, निदिध्यासनसमाध्यनुष्ठानस्यापेक्षितत्वात्तेऽपि प्रदर्श्यन्ते।
इस प्रकार अपने ही स्वरूप 'चैतन्य' के साक्षात्कार होने तक श्रवण, मनन, निदिध्यासन, समाधि आदि अनुष्ठानों के अपेक्षित होने के कारण वे भी प्रदर्शित किए जा रहे हैं।

➢ **श्रवण-**'श्रवणं नाम षड्विधलिङ्गैशेषवेदान्तानामद्वितीये वस्तुनि तात्पर्यावधारणम्। सम्पूर्ण वेदान्तसूत्रों का, अद्वितीयवस्तु ब्रह्म में ही तात्पर्य है, यह निश्चय करना ही वस्तुतः श्रवण है।

➢ **षड्लिङ्ग-**लिङ्गानि तूपक्रमोपसंहाराभ्यासापूर्वताफलार्थवादोपपत्त्याख्यानि। उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद तथा उपपत्ति नामक ये छः लिङ्ग हैं।

➢ **उपक्रम एवं उपसंहार-** तत्र प्रकरणप्रतिपाद्यस्यार्थस्य तदाद्यन्तयोरुपपादनमुपक्रमोपसंहारौ। छः लिङ्गों में प्रकरण में प्रतिपादन योग्य पदार्थ का उसके प्रारम्भ एवं अन्त में प्रतिपादन करना क्रमशः उपक्रम एवं उपसंहार है।

➢ **अभ्यास-**प्रकरणप्रतिपाद्यस्य वस्तुनस्तन्मध्ये पौन्यः पुन्येन प्रतिपादनमभ्यासः। प्रकरण में प्रतिपादित वस्तु का बीच-बीच में बार-बार प्रतिपादन करना ही **अभ्यास** है।

➢ **अपूर्वता** - प्रकरणप्रतिपाद्यस्याद्वितीयवस्तुनः प्रमाणान्तराविषयी करणमपूर्वता। प्रकरण में प्रतिपादित अद्वितीय वस्तु को अन्य प्रमाणों से अगम्य वर्णित करना **'अपूर्वता'** है।

➢ **फल-** फलं तु प्रकरणप्रतिपाद्यस्यात्मज्ञानस्य तदनुष्ठानस्य वा तत्र तत्र श्रूयमाणं प्रयोजनम्।

प्रकरण में प्रतिपादित करने योग्य आत्मज्ञान अथवा उसके अनुष्ठान के प्रसंग में श्रूयमाण प्रयोजन ही फल है।

- **अर्थवाद-** प्रकरणप्रतिपाद्यस्य तत्र तत्र प्रशंसनमर्थवादः।
  प्रकरण में प्रतिपादित करने योग्य अद्वितीय वस्तु परमब्रह्म की जहाँ-जहाँ अवसर प्राप्त होने पर की गई प्रशंसा को अर्थवाद कहा गया है।
- **उपपत्ति-** प्रकरणप्रतिपाद्यार्थसाधने तत्र तत्र श्रूयमाणायुक्तिरुपपत्तिः
  प्रकरण में प्रतिपादनयोग्य अद्वितीय वस्तु परमब्रह्म को प्रमाणित सिद्ध करने के लिये यत्र-तत्र जो तर्क एवं युक्तियाँ प्रस्तुत की जाती है। उसे ही उपपत्ति कहा गया है।
- **मनन -** मननं तु श्रुतस्याद्वितीयवस्तुनो वेदान्तानुगुणयुक्तिभिरनवरतमनुचिन्तनम्।
  वेदान्त में प्रतिपादित अनुकूल युक्तियों के माध्यम से अद्वितीयतत्त्व ब्रह्म का निरन्तर चिन्तन करना ही 'मनन' कहलाता है।
- **निदिध्यासन -** विजातीयदेहादिप्रत्ययरहिताद्वितीयवस्तुसजातीयप्रत्ययप्रवाहो।
  शरीर से लेकर बुद्विपर्यन्त भिन्न - भिन्न सभी जड़ पदार्थों में भिन्नता की भावना का परित्याग करके, सभी को एकमात्र ब्रह्म मानकर, विश्वास करना ही निदिध्यासन है।

ब्रह्म का साक्षात्कार होने तक अपेक्षित अनुष्ठान

- **श्रवण**- षड्लिङ्गयुक्त वेदान्तवाक्यों का अद्वितीय वस्तु में तात्पर्य।
- **मनन** - षड्लिङ्गयुक्त वेदान्तवाक्यों को समझकर निरन्तर ब्रह्म चिन्तन।
- **निदिध्यासन** - एकमात्र ब्रह्म में विश्वास

- **समाधि -** समाधि दो प्रकार की होती है। 1. सविकल्पक समाधि 2. निर्विकल्पक समाधि

  समाधिर्द्विविधः सविकल्पको निर्विकल्पकश्चेति।
- तत्र सविकल्पको नाम ज्ञातृज्ञानादिविकल्पलयानपेक्षयाद्वितीयवस्तूनि तदाकाराकारितायाश्चित्तवृत्तेरवस्थानम्।
- **सविकल्पक समाधि -** इस समाधि में ज्ञाता एवं ज्ञेय के भेद का लोप न होकर केवल अद्वितीयवस्तु के आकार से आकारित चित्तवृत्ति की स्थिति ही सविकल्पक समाधि है।
- जिसमें समाधि होने के बाद भी उसे अपने आपका और दूसरे का भी भान न हो वह सविकल्पक समाधि है। जैसे -मिट्टी का हाथी।

  ज्ञाता - जो जानना चाहता है अर्थात् जिज्ञासु।

  ज्ञेय - ब्रह्म या जिसको जानना चाहते हैं।

  ज्ञान - विषय (ब्रह्म) को पाने का मार्ग ज्ञान है।

त्रिपुटी
- ध्याता, ज्ञाता
- ध्यान, ज्ञान
- ध्येय, ज्ञेय

प्राणायाम

1. रेचक 2. पूरक 3. कुम्भक

समाधि के विघ्न

1. लय (निद्रा आना)
2. विक्षेप (अन्यवस्तु का आलम्बन)
3. कषाय (राग, द्वेष से चित्त का जड़ होना)
4. रसास्वादन (समाधि से प्राप्त आनन्द का अनुभव)

जीवन्मुक्ति का स्वरूप

1. अखण्ड ब्रह्मज्ञान।
2. अज्ञान दूर होकर ब्रह्म साक्षात्कार।
3. सञ्चित क्रियमाणादि कर्म, संशय, विपरीत ज्ञान का विनाश।
4. कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि बन्धनमुक्त तथा ब्रह्म के स्वरूप में स्थित होना।

- **निर्विकल्पक समाधि -** जिसमें अपने आपका और वर्षा, तूफान किसी भी वस्तु का ज्ञान न रहें वह निर्विकल्पक समाधि है।
- निर्विकल्पकस्तु ज्ञातृज्ञानादिविकल्पलयापेक्षयाद्वितीयवस्तुनि-तदाकाराकारितयाश्चित्तवृत्तिरतितरामेकीभावेनावस्थानम्
- **समाधि के आठ अङ्ग-** 'यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इसके आठ अङ्ग है। अस्याङ्गानि - यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयः।

निर्विकल्पक समाधि

1 यम, 2 नियम, 3 आसन, 4 प्राणायाम, 5 प्रत्याहार, 6 धारणा, 7 ध्यान, 8 समाधि

- **1.यम-** अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पाँच यम हैं। अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।
- **2. नियम-** शौच, सन्तोष, तप,स्वाध्याय एवं ईश्वर की आराधना ये पाँच नियम हैं। शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।
- **3.आसन-** हाथ, पैर आदि की स्थिति विशेष के बोधक पद्म एवं स्वस्तिक आदि आसन हैं। करचरणादिसंस्थानविशेषलक्षणानि पद्मस्वस्तिकादीन्यासनानि।
- **4.प्राणायम-** रेचक, पूरक, कुम्भक लक्षणों से युक्त प्राण को नियन्त्रित करने का उपाय ही प्राणायाम है। रेचकपूरककुम्भकलक्षणाः प्राणनिग्रहोपायाः प्राणायामाः

- **5.प्रत्याहार-** अपने- अपने विषयों से इन्द्रियों को निवृत्त कर लेना 'प्रत्याहार' है। इन्द्रियाणां स्वस्वविषयेभ्यः प्रत्याहरणं प्रत्याहारः।
- **6.धारणा-** अद्वितीयवस्तु (ब्रह्म) में अन्तरिन्द्रियों (मन, बुद्धि एवं चित्त) को नियोजित करना 'धारणा' है।
  अद्वितीयवस्तुन्यन्तरिन्द्रियधारणं धारणा।
- **7.ध्यान-** अन्तरिन्द्रियों मन एवं बुद्धि आदि को रुक-रुककर उस अद्वितीयवस्तु ब्रह्म में प्रवृत्त करना ही ध्यान है।
  तत्राद्वितीयवस्तुनि विज्झिद्य विच्छिद्यान्तरिन्द्रियवृत्तिप्रवाहो ध्यानम्।
- **निर्विकल्पक समाधि के विघ्न -** निर्विकल्पक समाधि में चार विघ्न माने गये है। लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वाद नामक चार विघ्न होते है।
  लयविक्षेपकषायरसास्वादलक्षणाश्चत्वारो विघ्नाः सम्भवन्ति।

(i) लय- सविकल्पक से निर्विकल्पक समाधि में जाते समय कहीं नींद न आ जाय वह समाधि का लय नामक विघ्न है। लयावस्था में जाना।
लयस्तावदखण्डवस्त्वनवलम्बनेन चित्तवृत्तेर्निद्रा।

(ii) विक्षेप - जिस पर हम ध्यान लगाना चाहते हैं, उस पर ध्यान लगाने पर किसी और वस्तुओं पर भी हमारा मन चला जाय वह विक्षेप नामक विघ्न है। चित्तवृत्तेरन्यावलम्बनं विक्षेपः।

(iii) कषाय - जिस ब्रह्म पर हम ध्यान लगायें और उसी समय राग आदि का भाव आ जाय या क्रोध पीड़ा होना आदि ये सब कषाय विघ्न हैं।
लयविक्षेपभावेऽपि चित्तवृत्ते रागादिवासनयास्तब्धीभावादखण्डवस्त्वनवलम्बनं कषायः।

(iv) रसास्वाद - सविकल्पक समाधि में जब हम ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं। उसी के साथ - साथ हमें और भी आनन्द की प्राप्ति होती है उसी में निर्विकल्पक समाधि मानकर सन्तुष्ट हो जाना ही रसास्वाद नामक विघ्न है।
अखण्डवस्त्वनवलम्बनेनापि चित्तवृत्तेः सविकल्पकानन्दास्वादनं रसास्वादः।

- चार प्रकार के विघ्नों से पूर्णतयारहित चित्त, जब वायुरहित प्रदेश में स्थित दीपक के समान अचल होकर अखण्ड चैतन्यमात्र में स्थित रहता है। तब निर्विकल्पकसमाधि होती है, ऐसा कहा जाता है।
  विघ्नचतुष्टयेन विरहितं चित्तं निर्वातदीपवदचलं ----
  जीवन्मुक्ति - जीवन्मुक्ति का लक्षण है-
  ''भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
  क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।'' (मुण्डकोपनिषद्)
- समस्त बन्धनों से रहित हो जाने से केवल ब्रह्म में ही तत्पर रहने वाले ब्रह्मनिष्ठ को ही जीवन्मुक्त कहते हैं।
  ''अखिलबाधरहितो ब्रह्मनिष्ठः '' मुण्डकोपनिषद्
  उपदेशसाहस्री में जीवन्मुक्ति का लक्षण -
- सुषुप्तवज्जाग्रति यो न पश्यति, द्वयं य पश्यन्नपि चाद्वयत्वतः।
  तथा च कुर्वन्नपि निष्क्रियश्च यः, स आत्मविन्नान्य इतीह निश्चयः।।

सुषुप्ति के समान जो जाग्रत अवस्था में भी हर जगह अद्वैत को ही देखता है। द्वैत को देखता हुआ भी उसमें विद्यमान अद्वैत का ही दर्शन करता है तथा जो कर्म करते हुए भी निष्क्रिय है। वही इस लोक में आत्मज्ञानी है। अन्य कोई नहीं,यह निश्चित है।

कर्म - कर्म तीन प्रकार के हैं।

1. सञ्चित कर्म 2. क्रियमाण कर्म 3. प्रारब्ध कर्म

- अनादिकाल में किए गए कर्म जिनका फल अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है,**सञ्चितकर्म** कहलाते हैं।
- मन, वाणी एवं कर्म द्वारा वर्तमान जन्म में किए जा रहे कर्म - क्रियमाण कर्मों की श्रेणी में आते हैं। क्रियापूर्ण होने के बाद ये **सञ्चितकर्म** हो जाते हैं।
- चिरकाल के सञ्चित कर्म, जब फलोन्मुख होकर शुभ अथवा अशुभ फल प्रदान करने में तत्पर रहते हैं तब वे ही प्रारब्धकर्म कहलाते हैं।

प्रारब्धकर्म भी तीन प्रकार का होता है।

1. स्वेच्छाकृत 2. परेच्छाकृत 3. अनिच्छाकृत

- स्वेच्छा, अनिच्छा अथवा परेच्छारूप प्रारब्ध कर्मों द्वारा प्राप्त कराए गए, सुख एवं दुःखरूप फलों का अनुभव करते हुए, प्रारब्धकर्मों की समाप्ति के बाद आनन्दस्वरूप आन्तरिक आत्मारूप के बाद परमब्रह्म में प्राणों के लीन होने पर सृष्टि के कारण अज्ञान तथा उसके कार्यरूप संस्कारों के पूर्णतया नष्ट होने के बाद उसे सभी प्रकार के भेदों का आभास होना बन्द हो जाता है।
- इस अवस्था में जीवन्मुक्त का शरीर पात हो जाता है तथा परमकैवल्य एकमात्र आनन्दरूप में स्थित हुआ वह अखण्ड ब्रह्मरूप में ही स्थित हो जाता है।

कर्म (समाधि युक्त)

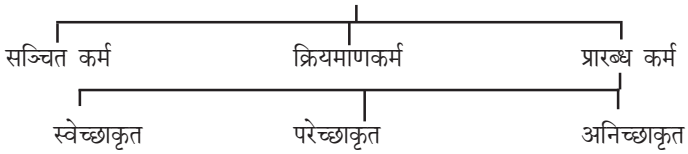

- प्रातिभासिक, व्यावहारिक एवं पारमार्थिक इन तीन प्रकार की सत्ताओं में से यहाँ जगत् की व्यावहारिक तथा प्रातिभासिक सत्ता को स्वीकार किया गया है।
- वेदान्त में एकमात्र ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की गई है।
- ब्रह्म जब शुद्धसत्त्वप्रधान अज्ञान से आवृत्त होता है तो इसी को ईश्वर कहा जाता है। यही अव्यक्त अन्तर्यामी संसार का कारण रूप होने से कारणशरीर कहलाता है।
- सूक्ष्म एवं स्थूलशरीरों का कारणशरीर लयस्थान भी होता है।
- स्थूल एवं सूक्ष्म जगत्प्रपञ्च का लयस्थान होने के कारण इसी कारणशरीर को सुषुप्ति भी कहा गया है।
- प्रलय की अवस्था में भी कारणशरीर की स्थिति बनी रहती है।

❑❑

7. अर्थसंग्रह

- मीमांसादर्शन के प्रवर्तक **महर्षि जैमिनि** हैं।
- मीमांसा शब्द 'मान्' धातु से 'जिज्ञासा' अर्थ में 'सन्' प्रत्यय लगकर बना है।
  मीमांसा = ✓मान् + सन् = पूजित विचार या पूजित जिज्ञासा
  मीमांसा = वेदवाक्यविचार प्राचीन मनीषियों ने वेदवाक्यों का विचार करने वाले इस मीमांसा को 'वाक्यशास्त्र' भी कहा है।
- वेद के दो विभाग हैं - मन्त्र और ब्राह्मण **'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।'** मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदः।।
- मन्त्र भाग प्रायः छन्दोमय हैं और ब्राह्मणभाग गद्यात्मक हैं। मन्त्रभाग में प्रायः देवताओं की स्तुति आदि विषय प्रतिपादित किये गये हैं। वेद के दूसरे भाग ब्राह्मण में उन देवताओं को उद्देश्य कर यज्ञयागादि के विविध अङ्गों का विस्तृत वर्णन-मिलता है। ब्राह्मणों का मुख्य विषय है- विधि।
- मीमांसकों के अनुसार-श्रुति का तात्पर्य केवल विधि से है।
- विधि का अर्थ है- यज्ञ तथा उसके अङ्गों-उपाङ्गो के अनुष्ठान का उपदेश।
- मीमांसक हमारे प्रथम दार्शनिक हैं और मीमांसा प्रथम दर्शन।
- मीमांसादर्शन यज्ञ से सम्बन्धित कर्मकाण्ड पर आधारित है। इसका मुख्य उद्देश्य वैदिक कर्मकाण्ड के स्वरूप का निरूपण करने का वैदिक विधि-निषेधों का अर्थ तथा उनमें परस्पर संगति बैठाने का है।
- बादरायणकृत ब्रह्मप्रतिपादक वेदविभाग से अलग बताने के लिये इस दर्शन को **पूर्वमीमांसा** कहा जाने लगा। इसे **कर्ममीमांसा,** तथा **धर्ममीमांसा** भी कहा जाता है।
- मीमांसाशास्त्र को **'तन्त्र'** शब्द से भी जाना जाता है।
- जैमिनिसूत्र 12 अध्यायों में विभक्त है अतः इसे **'द्वादशलक्षणी'** भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त चार अध्याय वाला संकर्षकाण्ड भी है। जिसमें कुल 436 सूत्र हैं। यहाँ लक्षण का अर्थ 'अध्याय' समझना चाहिये।
- रामानुज ने ब्रह्मसूत्र के अपने श्रीभाष्य में मीमांसादर्शन को **'षोडशाध्यायी'** कहा है, क्योंकि वे चार अध्याय वाले संकर्षकाण्ड को जैमिनि के मीमांसा दर्शन के अन्तर्गत ही मानते हैं।

- इस प्रकार लगभग 2745 सूत्रों को बारह अध्यायों में विभक्तकर पूर्वमीमांसा की रचना की गयी। प्रत्येक अध्याय में अनेक पाद हैं

द्वादश अध्यायों के नाम

1. धर्मप्रमाणम्	2. धर्माधर्मभेदौ
3.शेषशेषिभावः	4. क्रत्वर्थपुरुषार्थभेदेन प्रयुक्तिविशेषः
5. श्रुत्यर्थपाठनादिक्रमभेदः	6. अधिकारविशेषः
7. सामान्यातिदेशः	8. विशेषातिदेशः
9. ऊहः	10. बाधः
11. तन्त्रम्	12. प्रसङ्गः

- इन्हीं से सम्बन्धित माधवाचार्य ने यह दो कारिका लिखी है।

धर्मो द्वादशलक्षण्या व्युत्पाद्यस्तत्र लक्षणैः।।
प्रमाणभेदशेषत्वप्रयुक्तिक्रमसंज्ञकः।।
अधिकारोऽतिदेशश्च सामान्येन विशेषतः।
ऊहो बाधश्च तन्त्रं च प्रसङ्गश्चोदिताः क्रमात्।।

- इसप्रकार द्वादश अध्यायों में वर्णित जो भिन्न-2 पदार्थ हैं, वे ही अर्थ हैं। उन अर्थों के संक्षिप्त लक्षणों को प्रस्तुत ग्रन्थ में संग्रहित किया गया है। इसलिये इस ग्रन्थ का नाम 'अर्थसंग्रह' है।

मीमांसासूत्र के प्राचीन टीकाकार (व्याख्याता)

उपवर्ष- उपवर्ष, पाणिनि के गुरु वर्ष का भाई था, ऐसी सामान्य धारणा है। इन्होंने मीमांसासूत्रों पर एक वृत्ति लिखी है। इसका संकेत कथासरित्सागर के एक कथांश से मिलता है।

- **शबरस्वामी-** जैमिनिसूत्रों पर शबरस्वामी कृत विशदभाष्य है, जो **'शाबरभाष्य'** के नाम से प्रसिद्ध है। यह भाष्य शाङ्करभाष्य और पतञ्जलि के महाभाष्य की तरह ही महत्त्वपूर्ण भाष्य है।

  * जैमिनि सूत्रों को सुव्यवस्थित करने का श्रेय 'शबरस्वामी' को ही है इनका असली नाम 'आदित्यदेव' था। कहा जाता है कि जैनों के उत्पीड़न के भय से इन्होंने वनवासी शबर का वेश धारण कर लिया था, इसीलिये उन्हें शबरस्वामी कहा जाता है।

- **प्रभाकरमत और भाट्टमत** = शाबरभाष्य के पश्चात् मीमांसाशास्त्र की विचारधारा में कुछ-कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों के विषय में दो अन्योन्य भिन्न मतों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। उनमें से एक मत 'प्रभाकरमत' के नाम से और दूसरा कुमारिलमत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रभाकर को 'गुरुजी' की संज्ञा उनके प्रसिद्ध शिष्य शालिकनाथ के द्वारा दी जाने के कारण प्रभाकर का मत 'प्रभाकरमत' या 'गुरुमत' के नाम से प्रसिद्ध है।
- मीमांसाजगत् में कुमारिलस्वामी 'भट्ट' के उपपद से प्रसिद्ध होने के कारण उनके मत को 'भाट्टमत' कहा जाने लगा।

- प्रभाकर ने शाबरभाष्य पर दो टीकायें लिखीं हैं।
  1. बृहती 2. लघ्वी या विवरण

शाबरभाष्य की टीका

बृहती — लघ्वी विवरण

- प्रभाकर के शिष्य शालिकनाथ ने प्रभाकरगुरु विरचित बृहती पर 'ऋजुविमला' टीका की रचना की है।
- शालिकनाथ ने प्रभाकरमतानुसार ही मीमांसा पर 'प्रकरण पञ्चिका' नामक एक स्वतन्त्रग्रन्थ की भी रचना की है।
- **कुमारिलभट्ट** - कुछ लोग इन्हें प्रयाग निवासी, दूसरे मत के अनुसार इन्हें दक्षिण भारत का निवासी और तीसरे के मतानुसार इन्हें मिथिला प्रदेश का निवासी कहा जाता है।
- कुछ विद्वान् कुमारिल को बौद्ध मानते थे, बाद में श्रोत्रिय ब्राह्मण होकर प्रसिद्ध मीमांसक हो गये। इनके वैदुष्य से प्रभावित होकर अनेक मीमांसा के व्याख्याकारों ने इनके मत का समादर कर इन्हें इति 'भट्टपादाः' कहकर इनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है।
- कुमारिलभट्ट का समय लगभग 7000 ईसवी सन् माना जाता है।
- इनके प्रथम ग्रन्थ का नाम **'श्लोकवार्तिक'** है। यह शाबरभाष्य के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद की टीका है। इस पाद का नाम **'तर्कपाद'** है।
- दूसरे ग्रन्थ का नाम **तन्त्रवार्तिक** है। शाबरभाष्य के प्रथम अध्याय के अवशिष्ट तीन पाद, द्वितीय अध्याय एवं तृतीय अध्याय की गद्यात्मक टीका इसमें की गई है।
- शेष नौ अध्यायों की संक्षिप्त टीका तीसरे ग्रन्थ में **'टुप्टीका'** नाम से की गई है।
- श्लोकवार्तिक पर **पार्थसारथि मिश्र** कृत **'न्यायरत्नाकर'** नामक टीका लिखी गयी।
- 'तन्त्रवार्तिक' पर **सोमेश्वरभट्ट** कृत **'न्यायसुधा'** अथवा **'राणक'** नाम की सुप्रसिद्ध टीका है।
- **न्यायरत्नमाला-** यह भी स्वतन्त्रग्रन्थ है। इस पर प्रख्यात वेदान्ती रामानुजाचार्य ने राणकरत्न नामक व्याख्या लिखी है।
- **मण्डनमिश्र-** यह कुमारिलभट्ट के बहुसंख्यक शिष्यों में से विशेष प्रतिभासम्पन्न माने जाते हैं। ये मिथिला निवासी थे। इनकी मीमांसा पर लिखी प्रसिद्ध रचनायें-

  1. विधिविवेक- इसमें विधि पर विचार किया गया है।

  2. भावनाविवेक- इसमें आर्थीभावना की विवेचना की गई है।

  3. विभ्रमविवेक- इसमें ख्यातियों का विद्वत्तापूर्ण विवेचन है।

  4. मीमांसासूत्रानुक्रमणी- इसमें जैमिनि प्रणीत सूत्रों की श्लोकबद्ध संक्षिप्त व्याख्या की गई है।

कुमारिल की टीका (शाबरभाष्य पर)

श्लोकवार्त्तिक | तन्त्रवार्तिक | टुप्टीका

* माधवाचार्य द्वारा रचित **'जैमिनीयन्यायमाला'** नामक ग्रन्थ है।
* जयन्तभट्टकृत- **'न्यायमञ्जरी'** मीमांसा का प्रतिष्ठित ग्रन्थ है। इसका समय नवम शतक का उत्तरार्ध माना है।

भाट्ट समुदाय के प्रमुख आचार्य एवं उनकी कृतियाँ

सूचरित मिश्र	-	काशिका (श्लोकवार्तिक की व्याख्या)
सोमेश्वरभट्ट	-	न्यायसुधा (तन्त्रवार्तिक की व्याख्या)
रामकृष्णभट्ट	-	'युक्तिस्नेहपूरणी' (शास्त्रदीपिका की व्याख्या)
सोमनाथ	-	'मयूखमालिका' (शास्त्रदीपिका की व्याख्या)
अनन्तदेव	-	भाट्टालङ्कार मीमांसान्यायप्रकाश की व्याख्या'स्मृतिकौस्तुभ'
वेंकटदीक्षित	-	वार्त्तिकाभरण (टुप्टीका की व्याख्या)
जीवदेव	-	भाट्टभास्कर
शम्भुभट्ट	-	प्रभावली (भाट्टदीपिका की टीका)
नारायणतीर्थ मुनि	-	भट्टभाषाप्रकाश
नारायण केरलीय	-	मानमेययोदय
शङ्करभट्ट	-	मीमांसाबालप्रकाश, विधिरसायनदूषण
अन्नम्भट्ट		सुबोधिनी (तन्त्रवार्तिक की टीका) न्यायसुधा की व्याख्या
रामेश्वरसूरि	-	सुबोधिनी (द्वादशलक्षणी की टीका)
आपदेव	-	मीमांसान्यायप्रकाश (अपरनाम आपोदेवी)

अर्थसंग्रहकार- लौगाक्षिभास्कर का परिचय

- अर्थसंग्रह के रचनाकार / लेखक लौगाक्षिभास्कर हैं।
- आपोदेवी का सार ग्रहणकार **अर्थसंग्रह** नामक प्रकरणग्रन्थ की रचना करने वाले ग्रन्थकार का नाम 'भास्कर' था। जैसा कि अर्थसंग्रह के अन्तिम श्लोक में प्राप्त होता है-

  बालानां सुखबोधाय भास्करेण सुमेधसा।
  रचितोऽयं समासेन जैमिनीयार्थसंग्रहः॥
- लौगाक्षि इनके कुल (वंश) का नाम था और **भास्कर** स्वयं का नाम था।
- कीथ के अनुसार इनके पिता का नाम **मुद्गल** और पितामह का नाम **रुद्र** था।
- लौगाक्षिभास्कर का समय **16 वीं शताब्दी का उत्तरार्ध** माना जाता है।
- लौगाक्षिभास्कर वासुदेव और रमा के उपासक थे।
- लौगाक्षिभास्कर की दो रचनायें प्राप्त होती है-

  (1) **तर्ककौमुदी** (2) **अर्थसंग्रह**

अर्थसंग्रह का मङ्गलाचरण

वासुदेवं रमाकान्तं नत्वा लौगाक्षिभास्करः।
कुरुते जैमिनिनये प्रवेशायार्थसंग्रहम्॥

- लौगाक्षिभास्कर ने लक्ष्मीकान्त विष्णु को नमस्कार करके जिज्ञासुओं को जैमिनि प्रणीत मीमांसादर्शन में प्रवेश कराने के लिये अर्थसंग्रह नामक ग्रन्थ की रचना करते हैं।
- मङ्गलाचरण में लौगाक्षिभास्कर ने रमाकान्त और वासुदेव इन दो नामों से विष्णु की वन्दना की है।
- जैमिनि के ग्रन्थ पूर्वमीमांसा में **'अथातो धर्मजिज्ञासा'** यह प्रथमसूत्र है।
- 'अथातो धर्मजिज्ञासा' इस सूत्र में 'अथ' शब्द वेदाध्ययन की 'अनन्तरता' या आनन्तर्य का वाचक है।
- 'अतः' शब्द वेदाध्ययन की 'दृष्टार्थता' का बोधक है।
- **धर्म- यागादिरेव धर्मः** यागादिक ही धर्म है।
- **धर्मलक्षण-** लौगाक्षिभास्करानुसार धर्म का लक्षण है-

'वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्मः'

जो वेद द्वारा प्रतिपादित हो, प्रयोजनवाला हो, और अर्थ हो उसी को धर्म कहा जाता है।

- **आपदेवी के अनुसार धर्मलक्षण-** 'वेदेन प्रयोजनमुद्दिश्य विधीयमानोऽर्थो धर्मः' यथा- यागादिः
- **जैमिनिकृत धर्मलक्षण-** 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः' अर्थात् प्रेरणादायी विधिवाक्य द्वारा जो प्रतिपादितहोता है, वह है - धर्म।
- यह जैमिनि का दूसरा सूत्र है।
- 'चोदना' शब्द - सम्पूर्ण वेद का वाचक है। 'चोदना' का अर्थ 'विधि' होता है।
- **भावना**- उत्पत्तिशील की उत्पत्ति में कारणभूत जो उत्पादयिता का मानसिक व्यापार विशेष होता है, उसे 'भावना' कहा जाता है। भावना नाम भवितुर्भवनानुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः।

  भावना, भविता, भवन, भावयिता ये समस्त शब्द 'भू' धातु से निष्पन्न हैं।
- 'भाव्यते अनया इति भावना' अर्थात् जिसके द्वारा होने के लिये प्रेरित किया जाये उसे 'भावना' कहते हैं।
- 'भावयति इति भावयिता' जो होने के लिए प्रेरित करता है वह 'भावयिता' है। 'भाव्यते इति भविता' जिसे होने के लिए प्रेरित किया जाय वह 'भविता' है।
- **भावना के प्रकार-** यह भावना दो प्रकार की होती है। (1) शाब्दीभावना (2) आर्थीभावना (1) **शाब्दीभावना-** पुरुषप्रवृत्यनुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः शाब्दीभावना।

  प्रयोज्य पुरुष के प्रवृत्ति के अनुकूल प्रयोजक के व्यापार विशेष को शाब्दीभावना कहते हैं।
- शाब्दीभावना का बोध 'लिङ्' अंश से होता है।
- शाब्दीभावना लौकिकवाक्य में प्रयोजक पुरुषनिष्ठ व्यापार विशेष है, किन्तु वैदिकवाक्य में प्रयोजक पुरुष के अभाव के कारण यह भावना लिङादिशब्दनिष्ठ ही होती है। शब्दनिष्ठ होने के कारण शाब्दीभावना कही जाती है।

- **शाब्दीभावनाया अंशत्रयम् -** सा च भावनांशत्रयमपेक्षते। साध्यं-साधनमितिकर्तव्यताञ्च।
- शाब्दीभावना में तीन अंश होते हैं -

  (1) साध्य (2) साधन (3) इतिकर्तव्यता

  इन अंशो का स्वरूप इसप्रकार है-

  * किं साधयेत् - क्या किया जाय?
  * केन भावयेत् - किससे किया जाय?
  * कथं भावयेत् - कैसे किया जाय?

  आर्थीभावनालक्षणम् - प्रयोजनेच्छाजनितक्रियाविषयव्यापार आर्थीभावना।
- स्वर्गादि प्रयोजन को लक्ष्य करके याग आदि क्रिया को सम्पादित करने का पुरुष में जो मानसिक व्यापार उत्पन्न होता है, उसे आर्थीभावना कहा जाता है।
- आर्थीभावना आख्यातत्व अंश से कही जाती है, क्योंकि व्यापारक्रिया का वाचक 'आख्यात सामान्य' ही होता है।
- उक्त लक्षण में 'प्रयोजन' का अर्थ फल है।

  अर्थ्यते प्रार्थ्यते पुरुषैरिति अर्थः फलम्। तत्प्रयोजकत्वाद् भावना आर्थी। यद् वा अर्थ्यते फलं येनेत्यर्थः पुरुषः तद्गतत्वादार्थी (सारविवेचिनी) आर्थीभावनाया अंशत्रयम्

  (1) साध्य (2) साधन (3) इतिकर्तव्यता

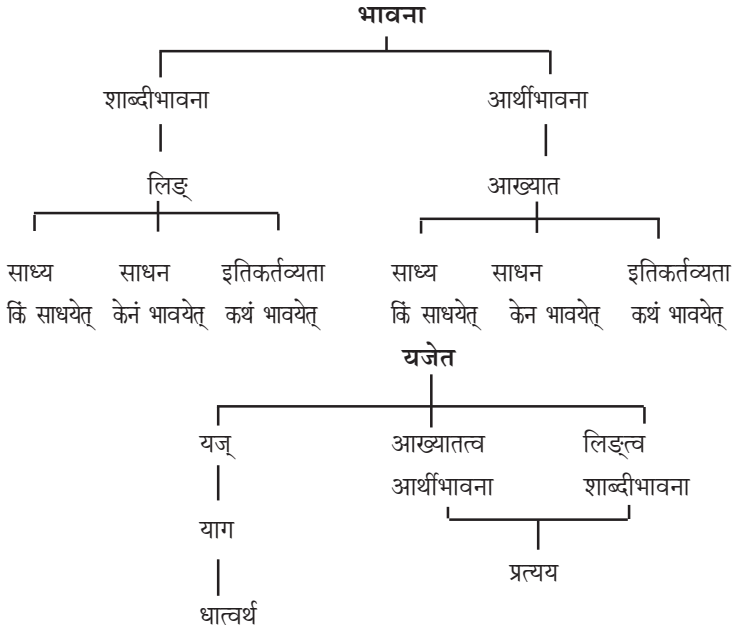

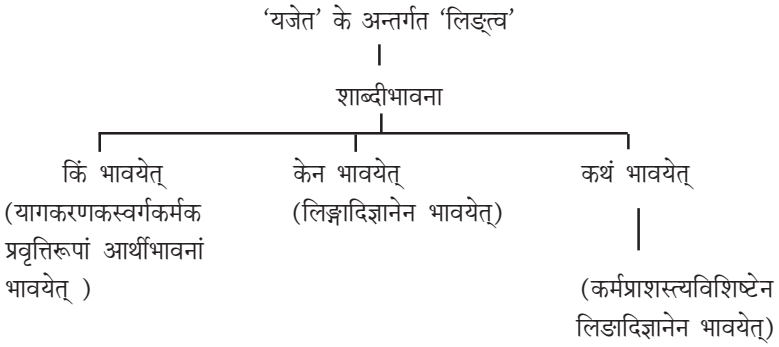

वेदलक्षणविचारः

वेदलक्षण- अपौरुषेयं वाक्यं वेदः
अपौरुषेय वाक्य को वेद कहते हैं।
स च विधि-मन्त्र-नामधेय-निषेधार्थवाद-भेदात्पञ्चविधः
वेद के पाँच भेद हैं- विधि, मन्त्र, नामधेय, निषेध और अर्थवाद।

- **विधि- तत्राज्ञातार्थज्ञापको वेदभागो विधिः।**
  अज्ञात अर्थ को ज्ञापित अथवा प्रकाशित कराने वाले वेदभाग को 'विधि' कहा जाता है।
- विधि अन्य प्रमाणों से अप्राप्त जिसप्रकार के अर्थ का विधान करती है। उसप्रकार के सप्रयोजन अर्थ के विधान से ही (वह विधि) सार्थक है।
- उदा0 - 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' यह एक विधिवाक्य है।
  अग्निहोत्र होम से स्वर्ग की भावना (प्राप्ति)करें।

2. गुणविधि का लक्षण- यत्र कर्म मानान्तरेण प्राप्तं तत्र तदुद्देशेन गुणमात्रं विधत्ते। यथा- 'दध्ना जुहोति'

- जहाँ पर कर्म यागादि दूसरे प्रमाण से प्राप्त हों, वहाँ पर विधि उस कर्म को उद्दिष्ट करके गुणमन्त्र का विधान करती है। जैसे- दध्ना जुहोति।
  दधि के द्वारा होम करें। यह अर्थ बोध होता है।

3. विशिष्ट विधि का लक्षण- यत्र तूभयप्राप्तं तत्र विशिष्टं विधत्ते। यथा - सोमेन यजेत।

- लेकिन जहाँ पर प्रमाणान्तर से दोनों कर्म और गुण अप्राप्त रहते हैं वहाँ पर विधि द्वारा दोनों का विधान होता है अर्थात् गुण विशिष्ट कर्म का विधान होता है।
- 'सोमेन यजेत' यहाँ पर अप्रमाणान्तर सोम और याग के अप्राप्त होने के कारण विधि

सोमविशिष्टयाग का विधान करती है।

- सोमपद में मत्वर्थलक्षणा से सोमवान् याग से इष्ट (स्वर्ग) का सम्पादन करें।

विधि का प्रथम विभाजन

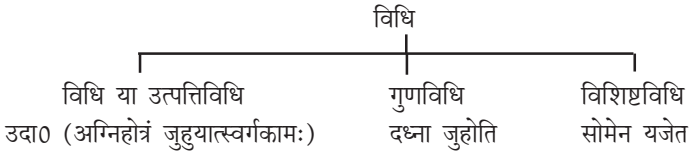

विधि का द्वितीय विभाजन

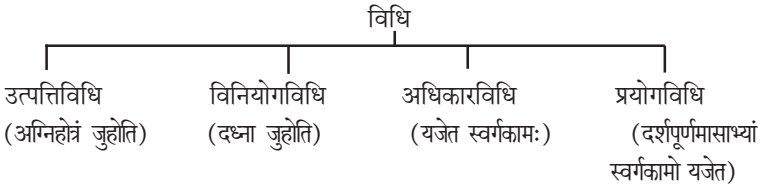

विधि का तृतीय विभाजन

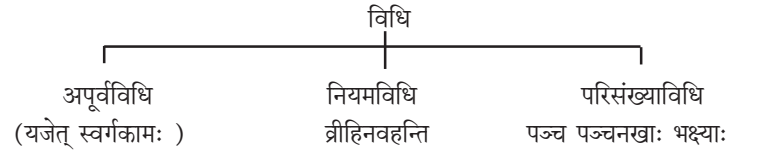

विधियों का दूसरा विभाजन

विधि चार प्रकार की होती है।

- **1. उत्पत्ति विधि** 'तत्र कर्मस्वरूपमात्रबोधको विधिरुत्पत्तिविधिः' (यागादि) कर्म के स्वरूप मात्र का बोधक विधि 'उत्पत्तिविधि' होता है। उदा0- अग्निहोत्रं जुहोति।
  याग का लक्षण- 'उद्दिश्य देवतां द्रव्यत्यागो यागोऽभिधीयते।'
- **विनियोग विधि-** 'अङ्गप्रधानसम्बन्धबोधको विधिर्विनियोगविधिः'
  अङ्गों के साथ सम्बन्ध बोधक विधि को विनियोगविधि कहते हैं। उदा0- दध्ना जुहोति
- 'दध्ना जुहोति' का अर्थ 'दध्ना होमं भावयेत् ' अर्थात् दधि के द्वारा होम का सम्पादन होता है।
- जिस विधि द्वारा अंग (गौण,शेष) और प्रधान (मुख्य,शेषी) के उपकारकोपकार्यरूपी सम्बन्ध का ज्ञान होता है, उसे विनियोग विधि कहते हैं।

विनियोगविधि के षट् सहकारी भूत प्रमाण

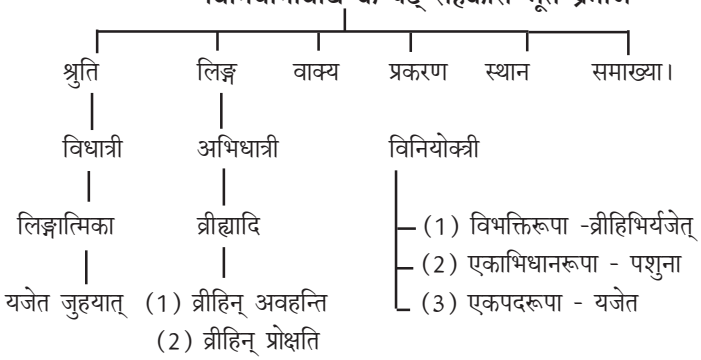

- **1 श्रुति-** तत्र निरपेक्षो रवः श्रुतिः। सा च त्रिविधा-विधात्री, अभिधात्री, विनियोक्त्री। तत्र आद्या लिङ्गाद्यात्मिका। द्वितीया व्रीह्यादिश्रुतिः। यस्य च शब्दस्य श्रवणादेव सम्बन्धः प्रतीयते सा विनियोक्त्री।
- प्रमाणान्तर की अपेक्षा न रखने वाला रव (शब्द) श्रुति है। वह श्रुति तीन प्रकार की होती है। विधात्री, अभिधात्री और विनियोक्त्री। उनमें से पहली श्रुति लिङ्गात्मिका। दूसरी श्रुति व्रीह्यादि है।
- जिस शब्द के सुनने मात्र से ही सम्बन्ध का ज्ञान होता है वह विनियोक्त्री श्रुति है।
- श्रुति का सामान्य लक्षण है 'शब्द'।
- विनियोक्त्री श्रुति के तीन भेद है। विभक्तिरूपा, एकाभिधानरूपा, एकपदरूपा।
- **विधात्री-** विधि या विधान करने वाली 'विधात्री' श्रुति कही जाती है। यह लिङ्गादिस्वरूप की ही होती है।

  यथा- 'यजेत', 'जुहुयात्' इसमें 'लिङ्' आदि प्रत्यय का श्रवण होने से यह विधात्री श्रुति है।
- 'यः प्रत्ययो विधायको लिङादिः, स एव विधात्री श्रुतिरित्यभिधीयते इत्यर्थः।' अभिधात्री अर्थात् अभिधान करने वाली अभिधात्री श्रुति होती है।
- अभिधया स्वार्थ्यं प्रतिपादयति इति सा अभिधात्री।

  इस श्रुति में पदार्थ के उच्चारण द्वारा अपेक्षित वस्तु का बोध होता है।

  उदा0- व्रीहिन् अवहन्ति, व्रीहीन् प्रोक्षति इत्यादि में 'व्रीहि' का अभिधान किया गया है।
- **विनियोक्त्री श्रुति-** जिस शब्द के श्रवण मात्र से ही सम्बन्ध का ज्ञान होता है वह विनियोक्त्री श्रुति होती है।
- यस्य च शब्दस्य श्रवणादेव सम्बन्धः प्रतीयते सा विनियोक्त्री सा = सः (शब्दः), स शब्दो विनियोक्त्री श्रुतिरित्यर्थः।

- विनियोक्त्री श्रुतिस्त्रिधा- विनियोक्त्री श्रुति तीन प्रकार की होती है।
  (1) विभक्तिरूपा (2) एकाभिधानरूपा पशुना (3) एकपदरूपा यजेत व्रीहिभिर्यजेत
- **लिङ्ग का लक्षण-** शब्दसामर्थ्यं लिङ्गम्। शब्दसामर्थ्य को लिङ्ग कहते हैं।
- तन्त्रवार्तिक के अनुसार- 'समस्त शब्दों में होने वाले सामर्थ्य को लिङ्ग कहते हैं।
- सामर्थ्य शब्द का अर्थ 'रूढि' है।
- 'यौगिक शब्द समाख्यातो रूढ्यात्मकलिङ्गशब्दस्य भिन्नत्वात्' रूढि की सामर्थ्य (शक्ति) है, इसीलिए समाख्या से इसका भेद है, क्योंकि यौगिकशब्द समाख्या से रूढ्यात्मक लिङ्ग शब्द से भिन्न होता है।
- इसीलिये 'बर्हिर्देसदनं दामि- इस मन्त्र का कुशल-वनाङ्गत्व सिद्ध होता है, उलपादिलवानागत्व नहीं, क्योंकि बर्हिर्दामि' इस लिङ्ग से कुशलवन रूप अर्थ को प्रकाशित करने में समर्थ है।
- इसीप्रकार अन्य स्थलों पर भी लिङ्ग से विनियोग समझना चाहिये।
- सामर्थ्य दो प्रकार का होता है। 1.शब्दगत सामर्थ्य 2.अर्थगत सामर्थ्य
  सामर्थ्यं द्विविधं शब्दगतमर्थगतं चेति
- शब्दगत सामर्थ्य को ही लिङ्ग कहा गया है। तन्त्रवार्तिककार कुमारिलभट्ट के अनुसार-

  'सामर्थ्यं सर्वशब्दानां लिङ्गमित्यभिधीयते'

  अर्थात् सभी शब्दों में स्थित सामर्थ्य को लिङ्ग कहते हैं।
- सामर्थ्य का अपर नाम 'शक्ति' है।

  वाक्य- 'समभिव्याहारो वाक्यम्'

  समभिव्याहार (सहोच्चारण) को वाक्य कहते हैं।

  साध्यत्वादि वाचक द्वितीया आदि विभक्तियों का अभाव होने पर भी शेष (अङ्ग) एवं शेषि (अङ्गी) का बोध कराने वाले पदों के सहोच्चारण को वस्तुतः वाक्य कहा जाता है।

  'यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति न स पापं श्लोकं शृणोति' जिस व्यक्ति की 'जुहू' पलाश काष्ठ निर्मित होती है वह अपना अपयश नहीं सुनता है।

  इस वाक्य में 'पर्णता' और 'जुहू' का एक साथ उच्चारण है इस हेतु में 'पर्णता' जुहू का अंग है।
- प्रकृतियाग जहाँ समस्त अङ्गों का उपदेश हो उसे 'प्रकृतियाग' कहते हैं।
  'यत्र समग्राङ्गोपदेशः सा प्रकृतिः',
- उदा0- 'दर्शपूर्णमासादि' प्रकृतियाग है क्योंकि दर्शपूर्णमासादि के प्रकरण में उनके समस्त अङ्गों अर्थात् धर्मों का पाठ किया जाता है, उनकी कर्तव्यता के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की आकांक्षा शेष नहीं रहती।
- विकृतियाग इसके विपरीत जिस याग के विषय में समस्त अङ्गों का पाठ प्राप्त नहीं होता है, उसे '-विकृतियाग' कहते हैं।

उदा0 शौर्य, श्येन, ऐन्द्राग्र इत्यादि याग विकृतियाग है।

- **प्रकरण का लक्षण-** उभयाकाङ्क्षा प्रकरणम्।
  दों वाक्यों की परस्पर आकांक्षा को प्रकरण कहते हैं।
  उदा0- प्रयाजादि में 'समिधो यजति' इत्यादि वाक्य में फलविशेष के निर्दिष्ट न होने के कारण 'समिद्यागेन भावयेत्' इसप्रकार के बोध के बाद 'किम् भावयेत्' यह उपकार्य (फल) की आकांक्षा होती है।
- दर्शपूर्णमास वाक्य में भी 'दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गं भावयेत्' इसप्रकार के बोध के बाद 'कथं भावयेत्' यह उपकारक (साधन) की आकांक्षा होती है।
- इसप्रकार उभयाकाङ्क्षा से प्रयाजादि का दर्शपूर्णमासाङ्गत्व सिद्ध होता है।**प्रकरण के भेद-** प्रकरण दो प्रकार का होता है।
  'तच्च प्रकरणं द्विविधम्।' महाप्रकरणमवान्तरप्रकरणञ्चेति
  (1) महाप्रकरण (2) अवान्तरप्रकरण
- **महाप्रकरण-** तत्र मुख्यभावनासम्बन्धिप्रकरणं महाप्रकरणं न च प्रयाजादीनां दर्शपूर्णमासाङ्गत्वम्।
  मुख्य अर्थात् फलभावना से सम्बन्धित प्रकरण को महाप्रकरण कहते हैं। उससे ही प्रयाजादि का दर्शपूर्णमासाङ्गत्व सिद्ध होता है।
- महाप्रकारण की प्रवृत्ति केवल प्रकृतियागों में ही सम्भव है क्योंकि उभयाकांक्षा केवल प्रकृतियागों में ही होती है।
- विकृतियाग में उभयाकांक्षा का सर्वथा अभाव रहता है।
- **अवान्तर प्रकरण का लक्षण-** अङ्गभावनासम्बन्धिप्रकरणमवान्तरप्रकरणम्।
  अङ्गभावना सम्बन्धि प्रकरण अवान्तर प्रकरण है, इसमें उभयाकांक्षा और अङ्गभावना सम्बन्धित दोनों का होना आवश्यक होता है।
- यह (अवान्तर प्रकरण) संदंश (दो के मध्य में पाठ) से ही जाना जाता है।
  सन्दंश का लक्षण- एकाङ्गानुवादेन विधीयमानयोरङ्गयोरन्तराले विहितत्व सन्दंशः।
- एक अङ्ग के अनुवाद से विधीयमान दो अङ्गों के बीच में किया जाने वाला विधान सन्दंश होता है। जैसे- अभिक्रमण में।
- सन्दंश शब्द का अर्थ चिमटा या संडसी होता है।
- टीका में इसका अर्थ संक्षेप में इस प्रकार दिया गया - प्रयाजानुवादेन विहित- तदङ्गमध्ये विहितत्वं सन्दंशः।
- 'दर्श एवं पूर्णमास' प्रधानयाग है।
- प्रयाज पाँच क्रियाओं का समूह है- वे क्रियाएँ है-
  1. समिधो यजति 2. तनूनपातं यजति 3. इडो यजति
  4. बहिर्यजति 5. स्वाहाकारं यजति
- **स्थान का लक्षण-** देशसामान्यं स्थानम्। तद् द्विविधम्।
  देश की समानता स्थान है। वह दो प्रकार की है।

(1) पाठसादेश्य(2) अनुष्ठान सादेश्य

- स्थान और क्रम ये दोनों समानार्थी हैं।
- पाठसादेश्य भी दो प्रकार का होता है- (1) यथासंख्यपाठ और (2) सन्निधि पाठ
  उदाहरणार्थ - अभिषेचनीय याग एवं देवनादि धर्मों का पाठ समानदेश (स्थान) में पाया जाता है अतः वहाँ प्रमाण की प्रवृत्ति प्राप्त होती है।
- स्थान और क्रम दोनों एक ही अर्थ के वाचक हैं।
- सादेश्य, सदेशत्व, समानदेशत्व, देशसामान्य - ये सभी समानार्थक शब्द के द्योतक हैं।
- **समाख्या का लक्षण-** समाख्या यौगिकः शब्दः।
  सा च द्विविधा। वैदिकी लौकिकी च।
- समाख्या नाम का अन्तिम प्रमाण है। समाख्या यह एक यौगिक शब्द है।
- यह दो प्रकार का होता है। वैदिकी और लौकिकी
- लक्षण में प्रयुक्त यौगिक शब्द का अर्थ- शब्द के घटकावयवों द्वारा व्यक्त किया हुआ अर्थ वही यौगिक शब्द है।
- उदाहरण- 'पाचक' इस शब्द में 'पच्' धातु और अक (ण्वुल्), कर्तृवाचक प्रत्यय- ये दो 'पाचक' शब्द के घटकावयव हैं।
- **पाचक शब्द का अर्थ-** पकाने वाला। इसीलिये पाचक एक यौगिक शब्द है।
- **यौगिक शब्द-** जिस शब्द से केवल अवयवार्थ का ही बोध हो उसे 'यौगिक शब्द' कहा जाता है।
- **वैदिकी समाख्या-** जो वेद में पठित होते हैं अर्थात् साक्षात् वेद के अङ्ग होते हैं ऐसे यौगिक शब्दों को वैदिकी समाख्या कहते हैं।
  उदा0- 'होतृचमस'= होता का चमस (चम्मच)
  (वह पात्र जिससे वह सोमरस का पान करता है।)
- **लौकिकी समाख्या-** याज्ञिकों द्वारा कल्पित वैदिकतर यौगिक शब्द लौकिकी समाख्या कहे जाते हैं।
  उदा0- आध्वर्यवण् - अध्वर्यु का कर्म
  यह उदाहरण याज्ञिकों द्वारा कल्पित है। केवल इस भेद मात्र से इस समाख्या को लौकिकी समाख्या कहा जाता है।

3. प्रयोगविधि- प्रयोगप्राशुभावबोधको विधिः प्रयोगविधिः।

- जिस विधिवाक्य से प्रयोग को शीघ्र करने का बोध होता है उसे प्रयोगविधि कहते हैं।
- 'अङ्गानां क्रमबोधको विधिः प्रयोगविधिः'
  अङ्गों के क्रम का बोध कराने वाली विधि को प्रयोगविधि कहते हैं। वह प्रयोगविधि

अङ्गवाक्यों के साथ एक वाक्यता होने पर भी प्रयोगविधि ही है। उदा0- दध्ना जुहोति।

- 'प्राशुभाव' का अर्थ है- विलम्ब न करना (त्वरा)
- प्राशुभाव = प्रकर्षेण शीघ्रता को व्यक्त करता है।
- **क्रम का लक्षण-** तत्र क्रमो नाम वितितिविशेषः। पौर्वापर्यरूपो वा।
- विस्तार विशेष क्रम है अथवा वह पूर्वापरभाव रूप होता है।

प्रयोगविधि के छह प्रमाण

श्रुति, अर्थ, पाठ, स्थान, मुख्य और प्रवृत्ति- प्रयोगविधि के यह छः प्रमाण हैं।
यही क्रम के निर्णायक प्रमाण माने गये हैं-

- **1. श्रुति का लक्षण -** तत्र क्रमपरवचनं श्रुतिः। तच्च द्विविधम् केवलक्रमपरं तद् विशिष्टपदार्थपरं चेति।

  उन छह प्रमाणों में क्रमबोधक वाक्य श्रुति है। वह दो प्रकार की है 1. केवलक्रमबोधक और 2. तद्विशिष्ट(क्रमविशिष्ट) पदार्थ बोधक।
- 'वेदं कृत्वा वेदिं करोति' यह केवलक्रमबोधक है' क्योंकि वेदिनिर्माण आदि अन्य वचनों से प्राप्त है।
- वेद (कुशमुष्टि) एवं वेदी की रचना का विधान दूसरे विधि वाक्यों से हो जाता है,यहाँ केवल क्रम का विधान क्त्वा प्रत्यय से हुआ है।
- 'वषट्कर्तुः प्रथमभक्षः' (अर्थात् वषट्कर्ता प्रथम भक्षण करें) यह क्रम विशिष्ट पदार्थबोधक है क्योंकि एकवाक्यता के भंग होने के भय से भक्षण को अनुवाद द्वारा क्रम मात्र का विधान करना असम्भव है।
- **2. अर्थक्रम का लक्षण-** 'यत्र प्रयोजनवशेन क्रमनिर्णयः सोऽर्थक्रमः।'
  यथा- 'अग्निहोत्रं जुहोति' और 'यवागूं पचति'
- जहाँ क्रम का निर्णय प्रयोजन के आधार पर होता है,उसे अर्थक्रम कहते हैं।
- यहाँ अर्थ शब्द प्रयोजन का वाचक है।
  अर्थक्रम का उदाहरण 'अग्निहोत्रं जुहोति' और 'यवागूं पचति' विधिवाक्य है।
- **3. पाठक्रम का लक्षण**- पदार्थबोधकवाक्यानां यः क्रमः स पाठक्रमः।
  पदार्थबोधकवाक्यों का जो क्रम है वह 'पाठक्रम' है। उससे पदार्थों का क्रम जाना जाता है।

  वह पाठ दो प्रकार का होता है-(i) मन्त्रपाठ (ii) ब्राह्मणपाठ
- **मन्त्रपाठ-** आग्नेय एवं अग्नीषोमीय यागों का जो क्रम इनके याज्यानुवाक्या वाक्यों के पाठ से निश्चित होता है वह मन्त्रपाठ से ही होता है।
- **ब्राह्मणपाठ-** ब्राह्मण वाक्य अनुष्ठान से बाहर रहकर ही 'यह करना चाहिए' इसप्रकार का ज्ञान कराकर कृतार्थ हो जाता है किन्तु मन्त्र अनुष्ठानकाल में प्रयुक्त होते हैं क्योंकि अनुष्ठान का क्रम स्मरणक्रम के अधीन होता है।
- 'समिधो यजति तनूनपातं यजति' इसप्रकार के पाठ से प्रयाजों का जो क्रम है वह

ब्राह्मणपाठक्रम से है।

- **4. स्थान लक्षण-** स्थानं नामोपस्थितिः।
  उपस्थिति को स्थान कहते हैं। स्थान का अर्थ है- उपस्थित होना या प्राप्त होना।
- किसी विशिष्ट स्थान पर कोई विशिष्ट पदार्थ कर्तव्यत्वेन उपस्थित प्राप्त होने पर, वह उसी स्थान पर अनुष्ठित हो ,इसप्रकार जो क्रम निश्चित किया जाता है वह क्रम, स्थान प्रमाण के आधार पर निश्चित किया जाता है। इसलिए, इसप्रकार से निश्चित किये गये क्रम को स्थानक्रम कहते हैं।
- **मुख्यक्रम का लक्षण-** 'प्रधानक्रमेण योऽङ्गानां क्रमः आश्रीयते स मुख्यः क्रमः। प्रधान के क्रम के अनुसार अङ्गों का जो क्रम है,वह मुख्यक्रम है।
  मुख्यक्रम के आधार पर ही प्रयाज से बचे हुए घृत से पहले आग्नेय हवि का तत्पश्चात् ऐन्द्रदधि का अभिषेक किया जाता है। आग्नेय और ऐन्द्र दोनों दर्शयाग के दो प्रमुख याग हैं।
- मुख्यक्रम पाठक्रम से दुर्बल होता है, क्योंकि अन्य प्रमाण से प्रधानक्रम को उपलब्धि होने के बाद प्रधानक्रमज्ञान से मुख्यक्रम का ज्ञान देने के कारण मुख्यक्रम की प्रतिपत्ति विलम्ब से होती है।
- **'प्रवृत्ति क्रम का लक्षण-** सहप्रयुज्यमानेषु प्रधानेषु संनिपातनामङ्गानामवृत्त्यानुष्ठाने कर्तव्ये हि द्वितीयादिपदार्थानां प्रथमानुष्ठितक्रमाद्यः क्रमः स प्रवृत्तिक्रमः।यथा- प्राजापत्यपश्वङ्गेषु।
- जब कोई प्रधान क्रिया अपने अङ्गों के अनुष्ठान के ही साथ-साथ अनुष्ठित की जाती है और उसके सन्निपत्योपकारक अङ्गों की आवृत्ति से अनुष्ठान करणीय होता है, तब प्रथम अनुष्ठित क्रिया के बाद द्वितीयादि पदार्थों के अनुष्ठान से जो क्रम बनता है,वही प्रवृत्तिक्रम कहा जाता है।
- प्राजापत्य नामक पशुयागों की अङ्गभूत क्रियाओं के क्रम का निश्चय प्रवृत्तिक्रम से ही होता है।

अधिकारविधि- कर्मजन्यफलस्वाम्यबोधको विधिरधिकारविधिः

कर्मजन्य फल की स्वाम्यबोधक विधि अधिकारविधि है।

- कर्मजन्यफलस्वाम्य का अर्थ है- कर्मजन्यफलभोक्तृता
- दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि अधिकारविधि यागादि कर्मों से उत्पन्न फल भोक्ता की योग्यताओं अथवा क्षमताओं का निर्धारण करती है।
- कर्म तीन प्रकार के होते हैं- 1. नित्य 2. नैमित्तिक 3. काम्य
- जिसके न करने पर कोई हानि अथवा पातक हो, करने पर कोई विशेष लाभ न हो वह नित्यकर्म होता है- जैसे-स्नान,शौच,सन्ध्योपासन आदि।
- काम्यकर्म में अधिकारविधि का उदाहरण है- यजेत स्वर्गकामः।
- यह विधि स्वर्ग को उद्देश्य करके याग का विधान करती हुई स्वर्गकाम व्यक्ति को

यागजन्य स्वर्गरूपफल का अधिकारी बताती है।

- पूर्व में वेद के पाँच विभाग- विधि,मन्त्र,नामधेय,निषेध और अर्थवाद का उल्लेख किया गया है- उनमें से मन्त्र दूसरा विभाग है।
- **मन्त्र-** प्रयोगसमवेतार्थस्मारका मन्त्राः।
  प्रयोग से सम्बन्धित प्रयोजन के स्मारक मन्त्र हैं। यागानुष्ठान द्रव्य, देवता,क्रिया आदि अनेक पदार्थों द्वारा सम्पन्न होता है।
- **नियमविधि का लक्षण-**नाना-साधनसाध्यक्रियायामेकसाधन-प्राप्तावप्राप्तस्यापरसाधनस्य प्रापको विधिर्नियमविधिः
- अनेक साधनों या कारणों से साध्य क्रिया में एक साधन प्राप्त होने पर अन्य साधन की प्रापकविधि नियमविधि कहलाती है।
  जैसा कि कहा गया है पदार्थ के अत्यन्त अप्राप्त रहने पर उसका विधान करने वाली विधि अपूर्वविधि कही जाती है।
- **'विधिरत्यन्तमप्राप्तौ नियमः पाक्षिके सति।'**
  पदार्थ की पाक्षिक (अप्राप्ति) होने पर पक्ष में अप्राप्त की प्रापक विधि नियमविधि है और दोनों (पदार्थों) के एक साथ प्राप्त होने पर एक की निवृत्ति का बोध कराने वाली विधि परिसंख्याविधि इस नाम से जानी जाती है।
- **परिसंख्या विधि– 'तत्र चान्यत्र च प्राप्तौ परिसंख्येति गीयते'**
- कुमारिल के अनुसार अपूर्वविधि का लक्षण- **'विधिरत्यन्तमप्राप्तौ'**
- लौगाक्षिभास्कर ने अपूर्वविधि की व्याख्या इस प्रकार की है-
- **अपूर्वविधि - प्रमाणान्तरेणाप्राप्तस्यप्रापकोविधिरपूर्वविधिः**
  इसका भाव है- जिस पदार्थ का ज्ञान किसी अन्य प्रमाण से नहीं होता उस पदार्थ का विधान करने वाली विधि अपूर्वविधि है। उदाहरण- **यजेत स्वर्गकामः।**
- स्वर्ग के साधनभूत याग का ज्ञान किसी अन्य प्रत्यक्षादि प्रमाण से न होकर केवल 'यजेत स्वर्गकामः' इसी विधि वाक्य से होता है।
- इसी अपूर्वविधि को केवलविधि या उत्पत्तिविधि भी कहते हैं।
  कुमारिल ने नियमविधि का लक्षण किया है- **'नियमः पाक्षिके सति'**
- लौगाक्षिभास्कर के अनुसार - 'पक्षेऽप्राप्तस्य प्रापको विधिर्नियमविधिः'
  उदाहरण- 'व्रीहीनवहन्ति' यह विधिवाक्य है। इसका अर्थ है- 'धान कूटे जायें'
- **परिसंख्या विधि का लक्षण -** (लौगाक्षिभास्कर के अनुसार)
  1. उभयोश्च युगपत्प्राप्ताविरतव्यावृत्तिपरो विधिः परिसंख्याविधिः 'पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या' इति।
  2. कुमारिल के अनुसार ''तत्र चान्यत्र च प्राप्तो परिसंख्येति गीयते ''
- जहाँ दो पदार्थों की एक साथ प्राप्ति हो रही है। वहीं एक का निषेध करने वाला वाक्य परिसंख्याविधि माना जाता है।

जैसे -पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या ब्रह्मक्षत्रेण राघव।
शशकः शल्लकी गोधा खड्गी कूर्मोऽथ पञ्चमः।। (किष्किन्धाकाण्ड-17/39)

- पाँच नाखूनों वाले प्राणियों और शशकादि पाँच से भिन्न पाँच नाखूनों वाले प्राणियों का भक्षण एक साथ प्राप्त हो रहा है। सामान्यरूप से दोनों का निषेध नहीं करते।
- उक्तविधि वाक्य में 'पञ्चनखाः' का विशेषण पञ्च शशकादि पाँच नखों के अतिरिक्त अन्य पञ्चनखों के भक्षण से पुरुष को निवृत्त करता है।
- परिसंख्या को निषेध न मानकर विधि ही माना गया है।

परिसंख्या विधि के भेद -

- सा च द्विविधा - श्रौती लाक्षणिकी चेति। वह दो प्रकार की होती है - श्रौती और लाक्षणिकी
- परिसंख्या विधि का मूल तात्पर्य - निवृत्ति में पर्यवसित होता है। यह निवृत्ति दो प्रकार से होती है।

  प्रथम विधिवाक्य में श्रुत किसी पद के माध्यम से -
  जैसे - 'अत्र ह्येवावपन्ति' यह श्रौती परिसंख्या है।
- द्वितीय जब निवृत्तिपरक पद विधिवाक्य में श्रुत नहीं होता अपितु लक्षण द्वारा उसकी कल्पना करनी पड़ती है तो उस परिसंख्या को लाक्षणिकी परिसंख्या कहा जाता है। जैसे -पञ्च पञ्चनखाः भक्ष्याः।

लाक्षणिकी परिसंख्या के तीन दोष -

श्रुतहानि, अश्रुतकल्पना और प्राप्तबाध ये तीन दोष हैं।

श्रुतार्थस्य परित्यागादश्रुतार्थप्रकल्पनात्।
प्राप्तस्य बाधादित्येवं परिसंख्या विदूषणा।

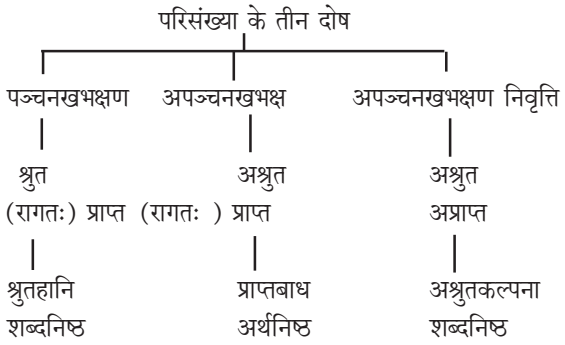

- यह कहा भी गया है श्रुत अर्थ के परित्याग, अश्रुत अर्थ की प्रकल्पना और (रागतः) प्राप्त अर्थ की बाधा से परिसंख्या तीन दोषों से युक्त होती है।
- **प्रथम दोष-**

  श्रुत पञ्चपञ्चनख भक्षण के परित्याग से

दूसरा दोष-

अश्रुत अपञ्चपञ्चनखभक्षणनिवृत्ति की कल्पना करने से -

- **तीसरा दोष-** (रागतः) प्राप्त अपञ्चनखभक्षण के बाध से

इन तीनों दोषों में दो दोष - शब्दनिष्ठ हैं।

प्राप्तबाध दोष - अर्थनिष्ठ है।

- **नामधेय मीमांसा**

नामधेयानां च विधेयार्थपरिच्छेदकतयार्थवत्त्वम्। तथा हि - उद्भिदा यजेत पशुकामः।

- नामधेय नाम अर्थात् संज्ञा को कहते हैं मीमांसादर्शन की पारिभाषिक शब्दावली में इसका अर्थ है-'किसी यज्ञ का नाम।'

नामधेय विधेय का अर्थ है - क्रियामात्र का बोध कराना।

- नामधेयों की सार्थकता इसी में है कि वे विधेय क्रिया को उसके सजातीय एवं विजातीय अर्थों की निवृत्तिपूर्वक निश्चित करें।

उदाहरण 'उद्भिदा यजेत पशुकामः' यह एक विधिवाक्य है जिसका अर्थ है - पशुकामव्यक्ति उद्भिद् से याग करें।

नामधेय के चार कारण-

- नामधेयत्वं च निमित्तचतुष्टयात् - मत्वर्थलक्षणाभयाद्, वाक्यभेदभयात्, तत्प्रख्यशास्त्रात्, तद्व्यपदेशाच्चेति।
- चार कारणों से नामधेयत्व होता है (1) मत्वर्थलक्षणा के भय से (2) वाक्यभेद के भय से (3) तत्प्रख्यशास्त्र से (4) तद्व्यपदेश से।
- पूर्व में वेद के पाँच विभागों में - विधि, मन्त्र, नामधेय, निषेध और अर्थवाद का उल्लेख किया गया है।

उन पाँच विभागों में से यहाँ चौथे विभाग निषेध को बताया जा रहा है -

(4) निषेध मीमांसा - पुरुषस्य निवर्तकं वाक्यं निषेधः।

पुरुष के निवर्त्तक वाक्य को निषेध कहते है, क्योंकि अनर्थ की कारणभूत क्रिया के निवृत्तिजनक होने के कारण ही निषेधवाक्य सप्रयोजन होते है।

- मीमांसादर्शन में निषेध वाक्य वे कहे जाते हैं जो पुरुष को किसी क्रिया को करने से विमुख करते हैं।

उदाहरण- न कलञ्जं भक्षयेत्। यह निषेधवाक्य है।

1. विधेः- प्रयोजनवदर्थविधानेनार्थवत्त्वम्
2. मन्त्रस्य- प्रयोगसमवेतार्थस्मारकत्वेनार्थवत्त्वम्
3. नामधेयस्य- विधेयार्थपरिच्छेदकतयार्थवत्त्वम्
4. निषेधस्य- अनर्थहेतुक्रियानिवृत्तिजनकत्वेनार्थवत्त्वम्
5. अर्थवादस्य- विधेयार्थस्तावकतयार्थवत्त्वम्

वेद के पाँच विभागों में से अर्थवाद का निरूपण किया जा रहा है-

- **(5) अर्थवाद मीमांसा** - प्राशस्त्यनिन्दान्यतरपरं वाक्यमर्थवादः

प्रशंसा अथवा निन्दापरक वाक्य को अर्थवाद कहते हैं।

- विधेय पदार्थ की प्रशंसा और निषेध्य पदार्थ की निन्दा करता हुआ अर्थवाद प्रवृत्ति-निवृत्ति में सहायक होता है।
- यह अभिधा द्वारा सम्पन्न न होकर लक्षणा द्वारा होता है।
  उदाहरण- **वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता -** इस अर्थवाद वाक्य का प्रयोजन वायु सबसे अधिक शीघ्रगामी देवता है यह वाच्यार्थ में नहीं है।
- अर्थवाद वाक्य भी वेद का एक भाग है। सम्पूर्ण वेद का तात्पर्य धर्म में निहित है। वे सभी यागादि क्रिया के प्रतिपादक हैं। अतः अर्थवाद का भी प्रयोजन यागादि परक ही होना चाहिये।

  अर्थवाद के दो भेद - (1) विधिशेष (2) निषेधशेष

अर्थवाद

विधिशेष	निषेधशेष
1. वायव्यं श्वेतमालभेतभूतिकामः।	वर्हिषि रजतं न देयम्।
2. वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता। (मन्त्र)सोऽरोदीद् यदरोदीत् तद् रुद्रस्य रुद्रत्वम् (मन्त्र)	

अर्थवाद के पुनर्त्रिधा भेद

गुणवाद	अनुवाद	भूतार्थवाद
आदित्यो यूपः	अग्निर्हिमस्य भेषजम्	इन्द्रोवृत्राय वज्रमुदयच्छत्।

अर्थवाद का लक्षण

पुरुषस्य	प्रवर्तकं	वाक्यं	विधिः
पुरुषस्य	निवर्तकं	वाक्यं	निषेधः
प्राशस्त्यनिन्दा	न्यतरपरं	वाक्यं	अर्थवादः

अर्थवाद पुनः तीन प्रकार का बताया गया है-

विरोधे गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते।
भूतार्थवादस्तद्ज्ञानादर्थवादस्त्रिधा मतः॥

(1) गुणवाद (2) अनुवाद (3) भूतार्थवाद

* विरोध होने पर **गुणवाद**
* ज्ञान होने पर **अनुवाद**
* उन दोनों (विरोध, और ज्ञान) का अभाव होने पर - **भूतार्थवाद**

(1) **गुणवाद-** प्रमाणान्तर से विरोध होने पर जो अर्थवाद होता है, उसे गुणवाद कहते हैं-

प्रमाणान्तरविरोधे सत्यर्थवादोगुणवादः। यथा - आदित्यो यूपः

(2) **अनुवाद-** अन्य प्रमाण द्वारा ज्ञात अर्थ का बोधक अर्थवाद अनुवाद होता है।

प्रमाणान्तरावगतार्थबोधकोऽर्थवादोऽनुवादः।

उदाहरण - **अग्निर्हिमस्य भेषजम्।**

(3) **भूतार्थवाद-** प्रमाणान्तर विरोध और प्रमाणान्तरप्राप्ति से अप्राप्त अर्थ का बोधक अर्थवाद भूतार्थवाद होता है।

- **प्रमाणान्तरविरोधतत्प्राप्तिरहितार्थबोधकोऽर्थवादो भूतार्थवादः।**

उदाहरण - इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छत्।

❑❑

8. श्रीमद्भगवद्गीता

- महर्षिवेदव्यास द्वारा विरचित महाभारत के भीष्मपर्व में वर्णित श्रीमद्भगवद्गीता सर्वाधिक लोकप्रिय भारतीय सनातनधर्म का ग्रन्थरत्न है।
- विश्व में सर्वाधिक टीकाओं से युक्त होने का गौरव गीता को ही प्राप्त है।

गीता में वर्णित शंख

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः।। 1/15
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ।। 1/16

देवता		**शंख**
श्रीकृष्ण	-	पाञ्चजन्य
अर्जुन	-	देवदत्त
भीम	-	पौण्ड्र
युधिष्ठिर	-	अनन्तविजय
नकुल	-	सुघोष
सहदेव	-	मणिपुष्पक

गीता के श्लोक संख्या

अध्याय नाम	-	**श्लोकसंख्या**
1. अर्जुनविषादयोग	-	47
2. सांख्ययोग	-	72
3. कर्मयोग	-	43
4. ज्ञानकर्मसंन्यासयोग	-	42
5. कर्मसंन्यासयोग	-	29
6. आत्मसंयमयोग	-	47
7. ज्ञानविज्ञानयोग	-	30
8. अक्षरब्रह्मयोग	-	28
9. राजविद्याराजगुह्ययोग	-	34

10. विभूतियोग	-	42
11. विश्वरूपदर्शनयोग	-	55
12. भक्तियोग	-	20
13. क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग	-	34
14. गुणत्रय विभागयोग	-	27
15. पुरुषोत्तमयोग	-	20
16. देवासुरसम्पत्विभागयोग	-	24
17. श्रद्धात्रयविभागयोग	-	28
18. मोक्षसंन्यासयोग	-	78
कुल श्लोक	**-**	**700**

- सबसे बड़ा अध्याय - 18, मोक्षसंन्यासयोग (78 श्लोक)
- सबसे छोटा अध्याय - 12वाँ और 15 वाँ (20-20 श्लोक)

श्रीमद्भगवद्गीता के कुछ प्रमुख पात्रों का परिचय -

धृतराष्ट्र	-	दुर्योधन आदि कौरवों के पिता
संजय-	दिव्यदृष्टि प्राप्त धृतराष्ट्र के मन्त्री	
धृष्टद्युम्न	-	पाण्डवों के सेनापति, द्रौपदी के भाई, द्रुपद के पुत्र
भीम	-	पाण्डवों में द्वितीय पाण्डव, कुन्तीपुत्र
अर्जुन	-	श्रीकृष्ण के सखा, पाण्डवों में तृतीय पाण्डव, कुन्तीपुत्र
युधिष्ठिर	-	पाण्डवों में प्रथम पाण्डव, कुन्तीपुत्र, धर्मराज के अवतार
नकुल	-	पाण्डवों में चतुर्थ पाण्डव,माद्री के पुत्र
सहदेव	-	पाण्डवों में अन्तिम पाण्डव, माद्री के पुत्र
द्रुपद	-	द्रौपदी के पिता,
धृष्टकेतु	-	पाण्डव पक्ष के वीर योद्धा
चेकितान	-	पाण्डव पक्ष के वीर योद्धा
काशिराज	-	पाण्डव पक्ष के वीर योद्धा
पुरुजित्	-	पाण्डव पक्ष के वीर योद्धा
कुन्तिभोज	-	पाण्डव पक्ष के प्रमुख योद्धा
अभिमन्यु	-	अर्जुन और सुभद्रा के पुत्र
पितामह भीष्म	-	कौरव पक्ष के प्रथम सेनापति, 10 दिन तक सेनापति रहे।
द्रोणाचार्य	-	कौरवों और पाण्डवों के गुरु, कौरवों के द्वितीय सेनापति,05 दिन तक सेनापति।
कर्ण	-	कौरवों के तीसरे सेनापति, 2 दिन तक सेनापति रहे।
कृपाचार्य	-	कौरवों के प्रमुख योद्धा, सप्त चिरजीवियों में एक
अश्वत्थामा	-	द्रोणाचार्य के पुत्र, कौरव पक्ष के प्रमुख योद्धा
विकर्ण	-	कौरवों पक्ष का प्रमुख योद्धा (दुर्योधन का भाई)

भूरिश्रवा	-	कौरव पक्ष का प्रमुख योद्धा
श्रीकृष्ण	-	भगवान् विष्णु के अवतार, अर्जुन को गीता का उपदेश देने वाले
राजा विराट	-	पाण्डव पक्ष के प्रमुख योद्धा, अज्ञातवाश में पाण्डव यहीं रहे थे।
दुर्योधन	-	धृतराष्ट्र के पुत्र, 100 पुत्रों में सबसे बड़ा

गीता में वर्णित चतुर्विध भक्त

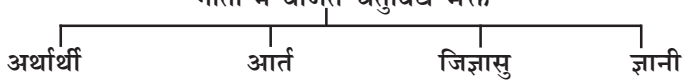

➢ चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।। 7-16
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।। 7-17
हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्म करने वाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु, और ज्ञानी - ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मुझको भजते हैं।
उनमें नित्य मुझमें एकीभाव से स्थित अनन्य प्रेमभक्ति ज्ञानी भक्त अति उत्तम हैं, क्योंकि मुझको तत्त्व से जानने वाले ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है

➢ गीता में श्रीकृष्ण अपने अवतार का कारण बताते हैं-
* यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। 4-7
* परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।। 4-8
हे भारत! जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् साकार रूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ।
साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए पापकर्म करने वाले का विनाश करने के लिए और धर्म की अच्छी तरह स्थापना करने के लिए मैं युग युग में प्रकट हुआ करता हूँ।

भगवान् के अवतार के हेतु

- धर्म की स्थापना के लिए
- साधुपुरुषों की रक्षा के लिए
- पापकर्म करने वालों को मारने के लिए
- धर्म की वृद्धि के लिए
- अधर्म की हानि के लिए

गीता में अर्जुन के लिए सम्बोधन

अर्जुन, गुडाकेश, पार्थ, परन्तप, भारत, कुन्तीपुत्र, पृथापुत्र, धनञ्जय, महाबाहो निष्पाप, कुरुश्रेष्ठ, सव्यसाचिन्, किरीटी, पाण्डव, कुरुनन्दन आदि।

गीता में श्रीकृष्ण के लिए सम्बोधन

हृषीकेश, कृष्ण, मधुसूदन, जनार्दन, माधव, श्रीभगवान्, अरिसूदन, गोविन्द, केशव, जगत्स्वामी, पुरुषोत्तम, अनन्त, देवेश, जगन्निवास, सच्चिदानन्दघन, आदिदेव, सनातनपुरुष, विश्वरूप, सहस्त्रबाहो, कमलनेत्र, परमेश्वर, महायोगेश्वर, देवदेव, अच्युत, केशिनिषूदन, योगेश्वर।

गीता में वर्णित आत्मा की विषेशतायें

- गीता के अनुसार आत्मा अच्छेद्य, अदाह्य अक्लेद्य, अशोष्य, नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर, सनातन, अव्यक्त, अचिन्त्य, विकाररहित, अबध्य है।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि। 2/25
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥ 2/24
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।
देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत॥ 2/30

गीता में वर्णित प्रमुख योग-कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग

कर्मयोग- हे अर्जुन ! तेरा कर्म करने का अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा तेसङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ (2/47)

- योग मार्ग में स्थित होकर कर्मों को करना चाहिए। **योगस्थः कुरु कर्माणि....।**
- गीता में समत्व को योग कहा गया है। **'समत्वं योग उच्यते'** (2/48)
- समत्वरूप योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्मबन्धन से छूटने का उपाय है।

योगः कर्मसु कौशलम् (2/50)

- गीता के अनुसार योगियों की निष्ठा कर्मयोग से होती है। **कर्मयोगेन योगिनाम्** (3/3)
- 'जो मनुष्य इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है।' **कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते** (3/7)
- गीता में श्रीकृष्ण यह बताते हैं कि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना अत्यन्त श्रेष्ठ है। **नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः** (3/8)

भक्तियोग-

- ईश्वर के प्रति अनन्यभाव से समर्पित होना ही भक्तियोग है।
- जो भक्तजन परमेश्वर का निरन्तर चिन्तन करते हैं उनका योगक्षेम स्वयं भगवान् अपने

ऊपर ले लेते हैं।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। (9/22)

- भक्तिपूर्वक जो कुछ भी सामग्री भगवान् को अर्पण की जाती है वह भगवान् उसी रूप में स्वीकार करते हैं।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति (9/26)

- गीता में श्रीकृष्ण यह कहते हैं कि जो मनुष्य मेरे लिए कर्म करता है, मेरा परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित वह अनन्यभक्ति से युक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।। (11/55)

- गीता में श्रीकृष्ण यह बताते हैं कि जो सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मों को मुझमें त्यागकर एक मुझ सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की शरण में आ जाता है उसे मैं सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर देता हूँ।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। (18/66)

स्थिरबुद्धि पुरुष के लक्षण

- दुःख में उद्विग्न न होना।
- सुख में अत्यधिक हर्षित न होना।
- राग, भय, क्रोध से मुक्त।

गीता के अनुसार अष्ट प्रकृति

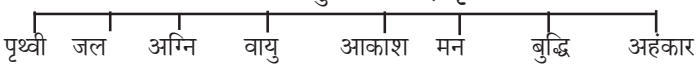

स्थिरप्रज्ञ का वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता में -

गीता में श्रीकृष्ण यह बताते हैं कि जिस समय मनुष्य अपने मन में सभी कामनाओं को मिटाकर आत्मा में सन्तुष्ट रहता है, उस काल में वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।। (2/55)

- दुःख होने पर जो उद्वेग नहीं करता और अत्यधिक सुख में सर्वथा निःस्पृह है तथा जिसके मन से राग, भय, और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है। **वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते (2/56)**
- गीता में अष्ट प्रकृति का वर्णन - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ये अष्ट प्रकार से विभाजित प्रकृति है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।। (7/4)

➢ श्रीमद्भगवद्गीता को **गीतोपनिषद्** भी कहा जाता है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण की विभूतियाँ -

जल में	-	रस ''रसोऽहमप्सु कौन्तेय'' (7.8)
चन्द्र सूर्य में	-	प्रकाश ''प्रभास्मि शशिसूर्ययोः'' (7.8)
वेदों मे	-	ओंकार ''प्रणवः सर्ववेदेषु'' (7.8)
आकाश में	-	शब्द ''शब्दः खे'' (7.8)
पुरुषों में	-	पुरुषत्व '' पौरुषं नृषु'' (7.8)
पृथ्वी में	-	गन्ध ''पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च'' (7.8)
अग्नि में	-	तेज ''तेजश्चास्मि विभावसौ'' (7.8)
तपस्वियों में	-	तप ''तपश्चास्मि तपस्विषु'' (7.9)
सम्पूर्णभूतों में	-	जीवन ''जीवनं सर्वभूतेषु'' (7.9)
बुद्धिमानों में	-	बुद्धि ''बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि'' (7.10)
तेजस्वियों में	-	तेज ''तेजस्तेजस्विनामहम् '' (7.10)
अदितिपुत्रों में	-	विष्णु ''आदित्यानामहं विष्णुः '' (10.21)
ज्योतियों में	-	किरणों वाला सूर्य ''ज्योतिषां रविरंशुमान् '' (10.21)
नक्षत्रों में अधिपति	-	चन्द्रमा ''नक्षत्राणामहं शशी'' (10.21)
वेदों में	-	सामवेद ''वेदानां सामवेदोऽस्मि'' (10.22)
देवों में	-	इन्द्र ''देवानामस्मि वासवः '' (10.22)
इन्द्रियों में	-	मन '' इन्द्रियाणां मनश्चास्मि'' (10.22)
एकादश रुद्रों में	-	शंकर '' रुद्राणां शङ्करश्चास्मि'' (10.23)
यक्ष तथा राक्षसों में	-	कुबेर ''वित्तेशो यक्षरक्षसाम् '' (10.23)
आठ वस्तुओं में	-	अग्नि ''वसूनां पावकश्चास्मि '' (10.23)
पर्वतों में	-	सुमेरु ''मेरुः शिखरिणामहम् '' (10.23)
पुरोहितों में	-	बृहस्पति ''पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् '' (10.24)
सेनापतियों में	-	स्कन्द ''सेनानीनामहं स्कन्दः'' (10.24)
जलाशय में	-	समुद्र '' सरसामस्मि सागरः'' (10.24)
महर्षियों में	-	भृगु '' महर्षीणां भृगुरहम्'' (10.25)
शब्दों में	-	(अक्षर) ओंकार ''गिरामस्म्येकमक्षरम्'' (10.25)
यज्ञों में	-	जपयज्ञ ''यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'' (10.25)
स्थिर रहने वालों में	-	पहाड़ ''स्थावराणां हिमालयः '' (10.25)
वृक्षों में	-	पीपल ''अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम् '' (10.26)
देवर्षियों में	-	नारद '' देवर्षीणां च नारदः '' (10.26)
सिद्धों में	-	कपिल '' सिद्धानां कपिलो मुनिः '' (10.26)

गन्धर्वों में	-	चित्ररथ " गन्धर्वाणां चित्ररथः " (10.26)
अश्वों में	-	उच्चैःश्रवा "उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्" (10.27)
हाथियों में	-	ऐरावत " ऐरावतं गजेन्द्राणाम्"
मनुष्यों में	-	राजा " नराणां च नराधिपम् " (10.27)
शस्त्रों में	-	वज्र " आयुधानामहं वज्रम्" (10.28)
गौओं में	-	कामधेनु " धेनुनामस्मि कामधुक् " (10.28)
सर्पों में	-	वासुकि " सर्पाणामस्मि वासुकिः " (10.28)
सन्तानोत्पत्ति में	-	कामदेव " प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः " (10.28)
नागों में	-	शेषनाग "अनन्तश्चास्मि नागानाम् " (10.29)
जलचरों में	-	वरुण " वरुणो यादसामहम् " (10.29)
पितरों में	-	अर्यमा " पितृणामर्यमा चास्मि " (10.29)
शासन करने वालों में	-	यमराज " यमः संयमतामहम् " (10.29)
दैत्यों में	-	प्रह्लाद " प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानाम् (10.30)
पशुओं में	-	सिंह "मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहम् " (10.30)
पक्षियों में	-	गरुड़ " वैनतेयश्च पक्षिणाम् " (10.30)
गणना करने वालों में	-	समय " कालः कलयतामहम् " (10.30)
पवित्र करने वालों में	-	वायु " पवनः पवतामस्मि " (10.31)
शस्त्रधारियों में	-	श्रीराम " रामः शस्त्रभृतामहम् " (10.31)
मछलियों में	-	मगर " झषाणां मकरश्चास्मि " (10.31)
नदियों में	-	भागीरथी गंगा " स्रोतसामस्मि जाह्नवी " (10.31)
विद्याओं में	-	अध्यात्मविद्या " अध्यात्मविद्या विद्यानाम्" (10.32)
तर्क में	-	वाद " वादः प्रवदतामहम् " (10.32)
अक्षरों में	-	अकार " अक्षराणामकारोऽस्मि " (10.33)
समासों में	-	द्वन्द्व " द्वन्द्वः सामासिकस्य च " (10.33)
नाश करने वालों में	-	मृत्यु " मृत्युः सर्वहरश्चाहम् " (10.34)
स्त्रियों में	-	"कीर्ति, श्री, वाक्,स्मृति, धृति, क्षमा, कीर्तिः श्रीर्वाक्चनारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा " (10.34)
श्रुतियों में	-	बृहत्साम " बृहत्साम तथा साम्नां " (10.35)
छन्दों में	-	गायत्री " गायत्री छन्दसामहम् " (10.35)
महीनों में	-	मार्गशीर्ष " मासानां मार्गशीर्षोऽहम् (10.35)
ऋतुओं में	-	वसन्त " ऋतूनां कुसुमाकरः " (10.35)
छल करने वालों में	-	जूआ " द्यूतं छलयतामस्मि" (10.36)
प्रभावशाली पुरुषों का	-	प्रभाव " तेजस्तेजस्विनामहम् " (10.36)
जीतने वालों का	-	विजय " जयोऽस्मि " (10.36)

निश्चय करने वालों का	-	निश्चय ''व्यवसायोऽस्मि'' (10.36)
सात्त्विक पुरुषों का	-	सात्त्विक भाव ''सत्त्वं सत्त्ववतामहम्'' (10.36)
वृष्णिवंशियों में	-	वासुदेव ''वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि'' (10.37)
पाण्डवों में	-	धनञ्जय ''पाण्डवानां धनञ्जयः'' (10.37)
मुनियों में	-	वेदव्यास ''मुनीनामप्यहं व्यासः'' (10.37)
कवियों में	-	शुक्राचार्य ''कवीनामुशना कविः'' (10.37)
दमन करने वालों का जीतने की इच्छा	-	दण्ड ''दण्डो दमयतामस्मि'' (10.38)
वालों की गुप्त रखने योग्य	-	नीति ''नीतिरस्मि जिगीषताम्'' (10.38)
भावों का (रक्षक)	-	मौन ''मौनं चैवास्मि गुह्यानां'' (10.38)
ज्ञानवानों का	-	तत्त्वज्ञान ''ज्ञानं ज्ञानवतामहम्'' (10.38)

गीता में वर्णित दैवीय गुण -

- गीता में श्रीकृष्ण यह बताते हैं कि दैवीय प्रकृति के आश्रित महात्मा मुझको सब भूतों का कारण जानकर अनन्य मन से निरन्तर भजते हैं।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥ (9/13)

- गीता में श्रीकृष्ण दैवी सम्पत्तियों का स्वरूप वर्णन करते हुए कहते हैं कि भय का सर्वथा अभाव, अन्तःकरण की शुद्धता, तत्त्वज्ञान के लिए ध्यान में स्थिति सर्वस्व समर्पण, इन्द्रियों का भली प्रकार दमन ये सब दैवी गुण हैं

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥ (16/1)

- मन, वाणी, शरीर से किसी को कष्ट न देना यथार्थ और प्रियभाषण, अहंकार करने वाले पर भी क्रोध न करना, किसी की भी निन्दा न करना, सभी प्राणियों में दया- ये सब दैवी सम्पत्तियाँ हैं।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥ (16/2)

गीता में वर्णित दैवी गुण

● अभय ● सत्त्वसंशुद्धि ● ज्ञानयोगव्यवस्थिति ● दान ● इन्द्रियों का दमन ● गुरुजनों की पूजा ● अग्निहोत्र करना ● स्वाध्याय करना ● अहिंसा ● सत्यभाषण ● क्रोध न करना ● अन्तः करण की शुद्धि ● निन्दा से दूर रहना ● बिना कारण दया करना ● तेज ● क्षमा ● धैर्य ● बाहर की शुद्धि

(गीता - 16/1-3)

गीता में वर्णित आसुरी सम्पदा

● दम्भ ● दर्प ● अभिमान ● क्रोध ● कठोरता ● अज्ञान
● असत्यभाषण ● अपवित्रता ● भ्रमित चित्त वाला ● विषय भोगों में अत्यन्त आसक्त
(गीता - 16 - 4,7,10,15,16)

➢ श्रीकृष्ण बताते है कि दम्भ, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोरता, अज्ञान ये आसुरी सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्।। (16/4)

➢ आसुर स्वभाव वाले मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों को नहीं जानते। इसलिए उनमें न तो बाहर भीतर की शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है और न सत्यभाषण ही है।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते।। (16/7)

गीता में अर्जुन द्वारा पूछे गये कुछ प्रमुख प्रश्न -

➢ गीता के प्रारम्भ मे अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण से पूछते हैं कि हे मधुसूदन! मैं किस प्रकार भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य के विरुद्ध लड़ूँगा? क्योंकि वे दोनों पूजनीय हैं?

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन।। (2/4)

➢ अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते हैं जिस प्रकार एक गुरु अपने शिष्य का सभी प्रकार से कल्याण करता है उसी प्रकार मैं आपका शिष्य हूँ अतः मेरे लिए जो कल्याण का साधन हो वह कहिये।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे।
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (2/7)

➢ श्रीकृष्ण से पूछते हुए अर्जुन कहते हैं कि यदि कर्म की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ है तो आप मुझे कर्म में क्यों लगाते हो?

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव।। (5/1)

➢ अर्जुन श्रीकृष्ण से ब्रह्म, अध्यात्म, क्रम के विषय में प्रश्न पूछते हुये कहते हैं कि ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है?

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते (8/1)

➢ अर्जुन अगुण परमेश्वर और निराकार ब्रह्म दोनों प्रकार के उपासकों के विषय में प्रश्न करते हुए पूछते हैं कि दोनों में अति उत्तम योगवेत्ता कौन हैं?

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।। (12/1)

- अर्जुन श्रीकृष्ण से प्रश्न करते हुए पूछते हैं कि जो मनुष्य शास्त्रविधि को त्यागकर देवताओं का पूजन करते हैं, उनकी कौन सी गति होती है? सात्विकी अथवा राजसी अथवा तामसी?

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः॥ (17/1)

गीता के अनुसार ईश्वर का निवास -

- श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि सभी प्राणियों के हृदय में जो रहता है वही ईश्वर है-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति (18/61)

गीता के अनुसार ज्ञान और अज्ञान का स्वरूप-

- अध्यात्म ज्ञान में नित्यस्थिति और तत्वज्ञान के अर्थरूप परमात्मा को ही देखता यह सब ज्ञान है और जो इससे विपरीत है वह अज्ञान है।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा॥ (13/11)

श्रीमद्भगवद्गीता का माहात्म्य

- **गीताशास्त्रमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतः पुमान्।**
  विष्णोः पदमवाप्नोति भयशोकादिवर्जितः॥
- **गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च।**
  नैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च॥
- **मलनिर्मोचनं पुंसां जलस्नानं दिने दिने।**
  सकृद् गीताम्भसि स्नानं संसारमलनाशनम्॥
- **भारतामृतसर्वस्वं विष्णोर्वक्त्राद्विनिःसृतम्।**
  गीतागङ्गोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥
- **एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतमेको देवो देवकीपुत्र एव।**
  एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि कर्माण्येकं तस्य देवस्य सेवा॥

गीता में चार वर्णों का वर्णन

- गीता में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों का वर्णन स्पष्ट रूप से मिलता है।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥ (4/13)

1.ब्राह्मण 2.क्षत्रिय 3.वैश्य 4.शूद्र

ब्राह्मणक्षत्रियविंशा शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥ (18/41)

गीता में वर्णित भगवान् श्रीकृष्ण की शक्तियाँ

- गीता में भगवान् की पाँच शक्तियों का वर्णन हुआ है-

आद्या गुणमयी दैवी तथान्या दिव्यचिन्मयी।
योगमायेति च प्रोक्ता गीतायां पञ्च शक्तयः॥

➢ **पञ्च शक्तियाँ**

मूल प्रकृति - (9/7)
दिव्य चिन्मयशक्ति - (4/6)
योगमाया शक्ति - (7/25)
दैवी शक्ति - (9/13)
गुणमयी माया - (3/27,29)

गीता में विश्वरूप-दर्शन-

➢ गीता के एकादश अध्याय में अर्जुन के प्रार्थना पर भगवान् श्रीकृष्ण अपना विराट् स्वरूप अर्जुन को दिखलाते हैं।

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्। (11/47)

गीता में कहे गये श्लोकों की संख्या-

श्रीकृष्ण भगवान् के द्वारा कहे गये श्लोक	-	574
अर्जुन के द्वारा कहे गये श्लोक	-	84
संजय के द्वारा कहे गये श्लोक	-	41
धृतराष्ट्र के द्वारा कहे गये श्लोक	-	1
योग	**-**	**700**

➢ **गीता में प्रयुक्त मुख्य छन्द-** गीता में चार छन्दों का प्रयोग मुख्य रूप से किया गया है।

1. अनुष्टुप् 2. बृहती 3. त्रिष्टुप् 4. जगती

➢ **गीता में अनुबन्ध चतुष्टय-**

1. **विषय-** गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग आदि विषय हैं।
2. **प्रयोजन-** जीव मात्र का कल्याण करना ही इस ग्रन्थ का प्रमुख प्रयोजन है।
3. **अधिकारी-** अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्य गीता को पढ़ने के अधिकारी हैं। किसी भी देश में रहने वाला, किसी वेश को धारण करने वाला, किसी सम्प्रदाय को मानने वाला, किसी वर्ण आश्रम में रहने वाला, किसी भी अवस्था वाला इस दिव्य वेद सार स्वरूप गीता को पढ़ने का और मुक्ति पाने का अधिकारी है।
4. **सम्बन्ध-** गीता के विषय और गीता में परस्पर प्रतिपाद्य-प्रतिपादक का सम्बन्ध है। जीव का कल्याण किस प्रकार हो - यह प्रतिपाद्य विषय है और कल्याण की युक्तियाँ बताने वाली होने से गीता स्वयं प्रतिपादक है।

श्रीमद्भगवद्गीता की प्रमुख सूक्तियाँ

1. **क्लैब्यं मा स्म गमः (2/3)**
   भावार्थ- नपुंसकता को मत प्राप्त हो।
2. **शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। (2/7)**
   मैं आपका शिष्य हूँ इसलिए आपके शरण आये हुए मुझको शिक्षा दीजिए।
3. **गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः। (2/11)**
   भावार्थ- जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिए और जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिए पण्डित जन शोक नहीं करते।
4. **आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत। (2/14)**
   भावार्थ- उत्पत्ति और विनाश दोनों अनित्य हैं इसलिए हे भारत! उनको सहन कर।
5. **समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते (2/15)**
   भावार्थ- सुख दुःख को समान समझने वाला धीर मोक्ष के योग्य होता है।
6. **नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। (2/16)**
   भावार्थ- असत् वस्तु की सत्ता नहीं है और सत् का अभाव नहीं है।
7. **अन्तवन्त इमे देहा। (2/18)**
   भावार्थ- ये सब शरीर नाशवान् है।
8. **नायं हन्ति न हन्यते। (2/19)**
   भावार्थ- यह आत्मा वास्तव में न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है।
9. **न हन्यते हन्यमाने शरीरे (2/20)**
   भावार्थ-शरीर के माने जाने पर भी (यह आत्मा) नहीं मारा जाता।
10. **वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।**
    तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही। (2/22)
    भावार्थ- जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसने नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।
11. **नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।**
    न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ (2/23)
    भावार्थ- इस आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सुखा सकता।
12. **नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।(2/24)**
    भावार्थ- यह आत्मा नित्य सर्वव्यापी, अचल स्थिर रहने वाला और सनातन है।

13. जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः। (2/27)

(क्योंकि) जन्मे हुए की मृत्यु निश्चित है।

14. सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥ (2/38)

जय-पराजय, लाभ हानि और सुख-दुःख को समान समझकर उसके बाद युद्ध के लिए तैयार हो जा, इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को नहीं प्राप्त होगा।

15. स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। (2/40)

भावार्थ- इस कर्मयोग रूप धर्म का थोड़ा-सा भी साधन जन्म मृत्यु रूप महान् भय से रक्षा कर लेता है।

16. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। (2/47)

भावार्थ- तेरा कर्म करने में ही अधिकार है (उसके) फलों में कभी नहीं।

17. समत्त्वं योग उच्यते। (2/48)

भावार्थ- समत्व ही योग कहलाता है।

18. बुद्धिनाशात् प्रणश्यति। (2/63)

भावार्थ- बुद्धि का नाश हो जाने से पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है।

19. प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते। (2/65)

भावार्थ- अन्तःकरण की प्रसन्नता होने पर इसके सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है।

20. अशान्तस्य कुतः सुखम् (2/66)

भावार्थ- शान्तिरहित मनुष्य को सुख कैसे मिल सकता है?

21. या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। (2/69)

भावार्थ- सम्पूर्ण प्राणियों के लिए जो रात्रि के समान है, उस नित्य ज्ञानस्वरूप परमानन्द की प्राप्ति में स्थितप्रज्ञ योगी जागता है।

22. स शान्तिमाप्नोति न कामकामी। (2/70)

भावार्थ- वही पुरुष परम शान्ति को प्राप्त होता है, भोगों को चाहने वाला नहीं।

23. निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति। (2/71)

भावार्थ- ममतारहित, अहंकाररहित जो है वही शान्ति को प्राप्त होता है।

24. तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्। (3/2)

भावार्थ- उस एक बात को निश्चित करके कहिये, जिससे मैं कल्याण को प्राप्त हो जाऊँ।

25. न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। (3/5)

भावार्थ- निःसन्देह कोई भी (मनुष्य) किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किए नहीं रहता।

26. यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। (3/9)

भावार्थ- यज्ञ के निमित्त किये जाने वाले कर्मों से अतिरिक्त दूसरे कर्मों में (लगा हुआ ही) यह मनुष्य समुदाय कर्मों से बँधता है।

27. परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ। (3/11)

भावार्थ- एक दूसरे को उन्नत करते हुए (तुम लोग) परम कल्याण को प्राप्त हो जाओगे।

28. भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्। (3/13)

भावार्थ- जो पापी लोग अपना शरीर पोषण करने के लिए ही अन्न पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं।

29. अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥ (3/14)

भावार्थ- सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है, वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ, विहित कर्मों से उत्पन्न होने वाला है।

30. एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।

अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति। (3/16)

भावार्थ- हे पार्थ! जो पुरुष इस लोक में इस प्रकार परम्परा से प्रचलित सृष्टि चक्र के अनुकूल नहीं बरतता अर्थात् अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता, वह इन्द्रियों के द्वारा भोगों में रमण करने वाला पापायु व्यर्थ ही जीता है।

31. नैव तस्य कृतेनार्थे नाकृतेनेह कश्चन। (3/18)

भावार्थ- उस महापुरुष का इस विश्व में न तो कर्म करने से कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मों के न करने से।

32. तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर। (3/19)

भावार्थ- इसलिए तू निरन्तर आसक्ति से रहित होकर सदा कर्तव्य कर्म को भलीभाँति करता रह।

33. यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ (3/21)

भावार्थ- श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं, वह जो कुछ प्रमाणित कर देता है समस्त मनुष्य समुदाय उसी के अनुसार बरतने लग जाता है।

34. अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते। (3/27)

भावार्थ- जिसका अन्तः करण अहंकार से मोहित हो रहा है ऐसा अज्ञानी मैं कर्ता हूँ ऐसा मानता है।

35. तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते॥ (3/28)
भावार्थ- परन्तु हे महाबाहो! गुणविभाग और कर्मविभाग के तत्त्व को जानने वाला ज्ञानयोगी सम्पूर्ण गुण ही गुणों में बरत रहे है। ऐसा समझकर (उनमें) आसक्त नहीं होता।

36. स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥ (3/35)
भावार्थ- अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भय को देने वाला है।

37. जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्। (3/43)
भावार्थ- हे महाबाहो! (अर्जुन) तू इस कामरूप दुर्जय शत्रु को मार डाल।

38. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ (4/7)
भावार्थ- हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् साकाररूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ।

39. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ (4/8)
भावार्थ- साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए पापकर्म करने वालों का विनाश करने के लिए और धर्म की अच्छी तरह से स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में प्रकट हुआ करता हूँ।

40. जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं (4/9)
भावार्थ- (हे अर्जुन) मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं।

41. ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। (4/11)
भावार्थ- जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ।

42. चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। (4/13)
भावार्थ- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों का समूह, गुण और कर्मों के विभागपूर्वक मेरे द्वारा रचा गया है।

43. गहना कर्मणो गतिः (4/17)
भावार्थ- क्योंकि कर्म की गति गहन है।

44. यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते। (4/23)
भावार्थ- यज्ञ सम्पादन के लिए कर्म करने वाले मनुष्य के सम्पूर्ण कर्म भलीभाँति विलीन हो जाते हैं।

45. ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥ (4/24)

भावार्थ- जिस यज्ञ में अर्पण अर्थात् स्रुवा आदि भी ब्रह्म है और हवन किये जाने योग्य द्रव्य भी ब्रह्म है तथा ब्रह्मरूप कर्त्ता के द्वारा ब्रह्मरूप अग्नि में आहुति देना रूप क्रिया भी ब्रह्म है - उस ब्रह्मकर्म में स्थित रहने वाले योगी द्वारा प्राप्त किये जाने योग्य फल भी ब्रह्म ही है।

46. यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्॥ (4/31)

भावार्थ- यज्ञ से बचे हुए अमृत का अनुभव करने वाले योगीजन सनातन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

47. सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥ (4/33)

भावार्थ- हे अर्जुन! यावन्मात्र सम्पूर्ण कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं।

48. तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ (4/34)

भावार्थ- उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ, उनको भली-भाँति दण्डवत् प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्मतत्त्व को भली-भाँति जानने वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे।

49. यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहम्। (4/35)

भावार्थ- जिसको जानकर फिर मोह नहीं होगा।

50. श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं। (4/39)

भावार्थ- श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञान को प्राप्त होता है।

51. संशयात्मा विनश्यति। (4/40)

भावार्थ- संशययुक्त मनुष्य परमार्थ से अवश्य भ्रष्ट हो जाता है।

52. कर्मयोगो विशिष्यते। (5/2)

भावार्थ- कर्मयोग (साधन में सुगम होने से) श्रेष्ठ है।

53. निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते। (5/3)

भावार्थ- क्योंकि राग द्वेषादि द्वन्द्वों से रहित (पुरुष) सुखपूर्वक संसारबन्धन से मुक्त हो जाता है।

54. फले सक्तो निबध्यते। (5/12)

भावार्थ- फल में आसक्त होकर बँधता है।

55. इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः। (5/19)

भावार्थ- जिनका मन समभाव में स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्था में ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया है।

56. ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः। (5/20)

भावार्थ- ब्रह्मवेत्ता पुरुष सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा में स्थित है।

59. ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः। (5/22)

भावार्थ- जो ये इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषों को सुखरूप भासते हैं तो भी निःसन्देह दुःख के ही हेतु हैं और आदि अन्त वाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिए हे अर्जुन बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।

58. भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥ (5/29)

भावार्थ- मुझको सब यज्ञ और तपों का भोगने वाला, सम्पूर्ण लोकों के ईश्वरों का भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूतप्राणियों का सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है।

59. न ह्यसन्न्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन (6/2)

भावार्थ- क्योंकि संकल्पों का त्याग न करने वाला कोई भी पुरुष योगी नहीं होता।

60. आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते। (6/3)

भावार्थ- योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले मननशील पुरुष के लिए निष्काम भाव से कर्म करना ही हेतु कहा जाता है।

61. आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः। (6/5)

आप ही तो अपने मित्र हैं और आप ही अपने शत्रु हैं।

62. समबुद्धिर्विशिष्यते। (6/9)

भावार्थ- समान भाव रखने वाला अत्यन्त श्रेष्ठ है।

63. युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥ (6/17)

भावार्थ- दुःखों का नाश करने वाला योग यथा योग्य आहार विहार करने वाले का, कर्मों में यथा योग्य चेष्टा करने वाले का और यथायोग्य तथा सोने जगने वाले का ही सिद्ध होता है।

64. तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितम्। (6/23)

भावार्थ- दुःखरूप संसार के संयोग से रहित है (तथा) जिसका नाम योग है उसको जानना चाहिए।

65. यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ (6/30)

भावार्थ- जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में सब के आत्मरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिए अदृश्य नहीं होता।

66. अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते। (6/35)

भावार्थ- परन्तु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! (यह मन) अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है।

67. न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति। (6/40)

भावार्थ- हे प्यारे! आत्मोद्धार के लिए अर्थात् भगवत्प्राप्ति के लिए कर्म करने वाला कोई भी मनुष्य दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।

68. मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति। (7/7)

भावार्थ- मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम (कारण) नहीं है।

69. मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। (7/14)

भावार्थ- जो पुरुष मुझको ही निरन्तर भजते हैं वे इस माया का उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसार से तर जाते हैं।

70. वासुदेवः सर्वम्। (7/19)

भावार्थ- सब कुछ वासुदेव ही है।

71. मद्भक्ता यान्ति मामपि। (7/23)

भावार्थ- मेरे भक्त (चाहे जैसे ही भजें, अन्त मे वे) मुझको ही प्राप्त होते हैं।

72. मामनुस्मर युध्य च। (8/7)

भावार्थ- मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर।

73. दुःखालयमशाश्वतम्। (8/15)

भावार्थ- दुःखों के घर (एवं) क्षणभंगुर

74. मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते। (8/16)

भावार्थ- हे कुन्ती पुत्र! मुझको प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता।

75. भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रालीयते। (8/19)

भावार्थ- वही यह भूत समुदाय उत्पन्न हो होकर लीन होता है।

76. यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। (8/21)

भावार्थ- जिस सनातन अव्यक्त भाव को प्राप्त होकर मनुष्य वापस नहीं आते, वह मेरा परम धाम है।

77. क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। (9/21)

भावार्थ- पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं।

78. गतागतं कामकामा लभन्ते। (9/21)

भावार्थ- भोगों की कामना वाले पुरुष बार-बार आवागमन को प्राप्त होते हैं अर्थात् पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग में जाते हैं और पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में आते हैं।

79. योगक्षेमं वहाम्यहम्। (9/22)

भावार्थ- योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

80. पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ (9/26)

भावार्थ- जो मेरे लिए प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह (पत्र-पुष्पादि) मैं खाता हूँ।

81. यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ (9/27)

भावार्थ- हे अर्जुन! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान दान देता है, जो तप करता है, वह सब मुझे अर्पण कर।

82. कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।(9/31)

भावार्थ- हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

83. अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्। (9/33)

भावार्थ- क्षणभंगुर और सुखरहित इस मनुष्य शरीर को प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर।

84. मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। (9/34)

भावार्थ- मुझमें मन वाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करने वाला हो, मुझको प्रणाम कर।

85. यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि। (10/25)

भावार्थ- सब प्रकार के यज्ञों में (मैं) जप यज्ञ हूँ।

86. अध्यात्मविद्या विद्यानाम्। (10/32)

भावार्थ- विद्याओं में अध्यात्मविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या हूँ।

87. निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्। (11/33)

भावार्थ- हे सव्यसाचिन! तू तो केवल निमित्तमात्र बन जा।

88. न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो। (11/43)

भावार्थ- आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है, फिर अधिक तो कैसे हो सकता है?

89. ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः। (12/4)

भावार्थ- वे सम्पूर्ण भूतों के हित में रत और सबमें समान भाव वाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं।

90. त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्। (12/12)

भावार्थ- त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है।

91. जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्। (13/8)

भावार्थ- जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दुःख और दोषों का बार-बार विचार करना।

92. ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः। (13/17)

भावार्थ- वह परब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति है।

93. पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्। (13/21)

भावार्थ- प्रकृति में स्थित ही पुरुष प्रकृति से उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थों को भोगता है।

94. देहेऽस्मिन्पुरुषः परः। (13/22)

भावार्थ- इस देह में स्थित यह आत्मा वास्तव में परमात्मा ही है।

95. न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्। (13/28)

भावार्थ- क्योंकि जो अपने द्वारा अपने को नष्ट नहीं करता इससे वह परम गति को प्राप्त होता है।

96. शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते। (13/31)

भावार्थ- हे अर्जुन! शरीर में स्थित होने पर भी न कुछ करता है और न लिप्त ही होता है।

97. ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥ (14/18)

भावार्थ- सत्त्वगुण में स्थित पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकों को जाते हैं, राजस पुरुष मध्य में अर्थात् मनुष्यलोक में रहते हैं और तमोगुण के कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्य में स्थित तामस पुरुष अधोगति को अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनियों को तथा नरकों को प्राप्त होते हैं।

98. उर्ध्वमूलमधः शाखामश्वत्थं प्राहुरव्ययम्। (15/1)

भावार्थ- आदिपुरुष परमेश्वर रूप मूलवाले और ब्रह्मारूप मुख्य शाखा वाले संसाररूप पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहते हैं।

99. न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥ (15/6)

भावार्थ- जिस परमपद को प्राप्त होकर मनुष्य लौटकर संसार में नहीं आते, उस (स्वयं प्रकाश परमपद को) न सूर्य प्रकाशित कर सकता है न चन्द्रमा और न अग्नि, वही मेरा परम धाम है।

100. ममैवांशो जीवलोके। (15/7)

भावार्थ- इस देह में (जीवात्मा) मेरा ही अंश है।

101. विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः। (15/10)

भावार्थ- अज्ञानी जन नहीं जानते, (केवल) ज्ञानरूप नेत्रों वाले तत्त्व से जानते हैं।

102. सर्वस्य चाहं ह्यदि सन्निविष्टः। (15/15)

भावार्थ- मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित हूँ।

103. दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता। (16/5)

भावार्थ- दैवी सम्पदा मुक्ति के लिए और आसुरी सम्पदा बाँधने के लिए मानी गयी है।

104. कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः। (16/11)

भावार्थ- विषय भोगों के भोगने में तत्पर रहने वाले 'इतना ही सुख' है इस प्रकार मानने वाले होते हैं।

105. तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। (16/24)

भावार्थ- इससे तेरे लिए कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है।

106. श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः। (17/3)

भावार्थ-यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिए जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं भी वही है।

107. यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते। (18/11)

भावार्थ- जो कर्मफल का त्यागी है वही त्यागी है, यह कहा जाता है।

108. यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्। (18/37)

भावार्थ- जो आरम्भ काल में विष के तुल्य प्रतीत होता है, परन्तु परिणाम में अमृत के तुल्य है।

109. स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः। (18/45)

भावार्थ- अपने-अपने स्वभाविक कर्मों में तत्परता से लगा हुआ मनुष्य भगवत्प्राप्ति रूप परमसिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

110. स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः। (18/46)

भावार्थ- अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा उस परमेश्वर की पूजा करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

111. सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः। (18/48)

भावार्थ- सभी कर्म धूएँ से अग्नि की भाँति दोष से युक्त हैं।

112. मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि। (18/58)

भावार्थ- मुझमें चित्त वाला होकर तू मेरी कृपा से समस्त संकटों को पार कर जायेगा।

113. प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति। (18/59)

भावार्थ- स्वभाव तुझे जबरदस्ती युद्ध में लगा देगा।

114. ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशोऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ (15/61)

भावार्थ- हे अर्जुन! शरीररूप यन्त्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित है।

115. तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।(18/62)

भावार्थ- हे भारत! सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जा।

116. सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ (18/66)

भावार्थ- सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पर्ण कर्तव्य कर्मों को त्यागकर एक मुझ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, शोक मत कर।

117. नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा। (18/73)

भावार्थ- (मेरा) मोह नष्ट हो गया (और) मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है।

118. करिष्ये वचनं तव। (18/73)

भावार्थ- आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

119. यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥ (18/78)

भावार्थ- जहाँ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जहाँ गाण्डीव-धनुषधारी अर्जुन हैं, वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है, ऐसा मेरा मत है।

❑❑

8. चार्वाक दर्शन

- चार्वाक दर्शन के आदि प्रवर्तक **'बृहस्पति'** को माना गया है।
- चार्वाक दर्शन को **'बार्हस्पत्य सूत्र'** तथा **'बार्हस्पत्य दर्शन'** भी कहते हैं।
- सामान्य लोगों की तरह आचरण करने के कारण चार्वाकों को **'लोकायत'** या **'लोकायतिक'** भी कहा जाता है।
- खाओ (चर्व् = भोजन करना), पीओ, मौज उड़ाओ - इस सिद्धान्त के कारण भी 'चार्वाक' संज्ञा मानी जाती है।
- बृहस्पति के शिष्य 'चार्वाक' द्वारा प्रचारित होने के कारण भी **'चार्वाक'** नाम माना जाता है।
- गुणरत्न के अनुसार पुण्य, पापादि परोक्ष को न मानने के कारण (चट कर जाने से) 'चार्वाक' नाम पड़ा।
- चारु+वाक् अर्थात् चारु=सुन्दर तथा वाक् = वाणी (उपदेशक) होने के कारण भी 'चार्वाक' कहा जाता है।
- लोकायत दर्शन को ही **'बाह्यदर्शन'** भी कहते हैं।
- चार्वाक ग्रन्थों में 'बार्हस्पत्य-सूत्र' ही इस दर्शन का सर्वस्व है।
- पतञ्जलि के समय में भागुरी नामक टीकाग्रन्थ विद्यमान था।
- भट्टजयराशि विरचित 'तत्त्वोप्लवसिंह' में चार्वाक के तथ्यों का प्रतिपादन है।
- 'तत्त्वोप्लव सिंह' तर्कबहुल ग्रन्थ है, इसका समय 10 वीं शताब्दी के आस-पास माना जाता है।
- चार्वाक दर्शन केवल **'प्रत्यक्ष प्रमाण'** को ही मानता है।
- श्रुति (वेद) को प्रमाण न मानने वाले दर्शनों को **'अवैदिकदर्शन'** कहा गया है।
- अवैदिक दर्शनों में **सबसे प्राचीन दर्शन** 'चार्वाक दर्शन' ही है।
- चार्वाक दर्शन **'नास्तिक दर्शन'** है।
- चार्वाकों के अनुसार 'शरीर ही आत्मा है और मरण ही मुक्ति।'
- चार्वाक ने 'काम' को ही मानव जीवन का पुरुषार्थ माना है।
- चार्वाक दर्शन को मानने वाले शुद्ध बुद्धिवाद पर आस्था रखते थे।
- दूसरे पक्ष का खण्डन ही चार्वाकों का मुख्य ध्येय था।
- लोकायतिक प्राचीनकाल के **'वैतण्डिक'** थे। अपने तर्कों को छोड़कर ये लोग किसी भी शास्त्र को प्रमाण नही मानते थे।

- रामायण में रामचन्द्र ने भरत से इन लोकायतिकों की निन्दा की है।
- 'विनयपिटक' में भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को लोकायत शास्त्र सीखने या सिखाने का स्पष्ट निषेध किया है।
- 'सद्धर्मपुण्डरीक' में बोधिसत्त्व को इस शास्त्र को पढ़ने तथा पढ़ाने का स्पष्ट निषेध मिलता है।
- कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में बृहस्पति के मत का निर्देश किया है।
- इनके अनुसार प्रमेय की सिद्धि **प्रत्यक्ष प्रमाण** से ही हो सकती है।
- हमारी इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्षीकृत जगत् ही सत् है।
- स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय तथा श्रोत्रेन्द्रिय इन्हीं पाँच प्रकार के प्रत्यक्षों के द्वारा अनुभूत वस्तु प्रमाणभूत मानी जाती है।
- चार्वाक दर्शन 'अनुमान' को प्रमाण नहीं मानता है।
- चार्वाकों के अनुसार लोकव्यवहार के लिए 'सम्भावना' की आवश्यकता होती है 'निश्चय' की नहीं।
- 'सम्भावना' के आधार पर जगत् का समस्त अनुमान तथा व्यवहार चलता है ऐसा चार्वाक मानते हैं।
- चार्वाकों का मानना है कि सुख का कारण न तो धर्म है और न अधर्म। मनुष्य स्वभाव से सुखी अथवा दुःखी होता है।
- चार्वाक का सिद्धान्त **'स्वभाववाद'** के नाम से दार्शनिक जगत् में विख्यात है।
- चार्वाक जगत् की उत्पत्ति तथा विनाश का मूल कारण 'स्वभाव' को ही मानते हैं।
- इनके अनुसार वस्तु-स्वभाव जगत् की विचित्रता का कारण है। अन्य कुछ भी नहीं।
- चार्वाक लोग कार्य-कारणभाव को मानने के लिए तैयार नहीं होते। विना वस्तु के ही वस्तु के सद्भाव-अकस्मात् भूति - को अंगीकार करते हैं।
- चार्वाक 'शब्द' को भी प्रमाण नहीं मानते।
- चार्वाकों के अनुसार आप्त पुरुषों के वाक्यों की सत्यता में विश्वास करना एकदम निःसार है।
- उनके अनुसार अदृष्टलोक के अश्रुतपूर्व पदार्थों का वर्णन मनोरञ्जक कहानी से बढ़कर और सत्यता नहीं रखता।
- चार्वाकों के अनुसार यज्ञों में तुर्फरी, जर्भरी, पफरीका इत्यादि अनर्थक शब्दों का प्रयोग तथा माँस भक्षण के विधानों से वेद बनाने वाले धूर्त, भण्ड तथा निशाचर थे।
- चार्वाकों ने वैदिक ऋषियों तथा उसमें वर्णित श्रौत विधियों को पानी पी पी कर कोसा है।
- चार्वाकों के अनुसार संसार के **चार तत्त्व** ही होते हैं – पृथिवी, जल, तेज, तथा वायु। ये चार पदार्थ ही अपनी आणविक अवस्था में जगत् के मूल कारण हैं। बाह्य जगत्, इन्द्रियाँ तथा भौतिक शरीर इन्हीं चार मूलभूतों से उत्पन्न होते हैं।
- जगत् के किसी चेतन अन्तर्यामी की सत्ता न मानने से यह विश्व चार्वाकों की दृष्टि में अकस्मात् सम्मिलित होने वाले भूतचतुष्टय का संग्रह मात्र है।

- चार्वाकों का मानना है इस शरीर के अतिरिक्त आत्मा नामक अन्य कोई पदार्थ है ही नहीं। चैतन्य आत्मा का धर्म है, पर इस चैतन्य का सम्बन्ध शरीर से होने के कारण शरीर को ही आत्मा मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है।
- चार्वाकों के अनुसार चैतन्य तथा शरीर का सम्बन्ध तीन प्रकार से पुष्ट किया जा सकता है-

1. नैयायिक पद्धति से- अन्नपान के उपयोग से शरीर में प्रकृष्ट चेतना का उदय होता है, उसके न होने से चेतना का ह्रास हो जाता है।
2. अनुभव से- 'मैं स्थूल हूँ', 'मैं कृश हूँ', 'मैं श्रान्त हूँ', 'मैं प्रसन्न हूँ' इन अनुभवों का ज्ञान हमें जगत् में प्राप्त होता है। इन सबका सम्बन्ध चैतन्य के साथ शरीर में निष्पन्न होता है।
3. वैद्यकशास्त्र के प्रमाण से - वर्षाकाल में दही में बहुत ही जल्द छोटे-छोटे कीड़े रेंगते दिखाई पड़ते हैं। चैतन्य का भौतिक पदार्थ के साथ सम्बन्ध सत्य प्रतीत होता है।

- **'चैतन्यविशिष्टः कायः पुरुषः'** बृहस्पति का यह सूत्र युक्तियुक्त है। इसे ही चार्वाकों का 'भूतचैतन्यवाद' कहते हैं।
- चार्वाकों के अनुसार भूतों में चैतन्य की उत्पत्ति किन्हीं पदार्थों को एक विशेष प्रकार या मात्रा में सम्मिलित करने से अवस्थाविशेष में नये धर्म का उदय अपने आप हो जाता है।
- चार्वाकों के अनुसार भूत की एक विशेष ढंग या परिणाम में समष्टि होने पर चैतन्य की उत्पत्ति स्वयं सिद्ध हो जाती है।
- चार्वाक उदाहरण देते हैं कि जिस प्रकार पान, खैर, चूना तथा सुपारी में अलग-अलग ललाई दिखाई नहीं पड़ती, किन्तु एक विशिष्ट मात्रा में इनके संयोग होने से पान खाने वाले के मुँह में ललाई उत्पन्न हो जाती है, इसप्रकार चैतन्य के उदय की घटना बतायी जाती है।
- चैतन्य की उत्पत्ति और विनाश के साधन तथा आधार होने के कारण शरीर को ही चार्वाक लोग आत्मा मानते हैं।
- चार्वाक लोग एक-देशीय श्रुति तथा अनुभव के आधार पर इन्द्रियों को, कुछ लोग प्राण को और अन्य लोग मन को आत्मा मानते थे।
- स्वभाव से ही जगत् के लय की समस्या हल कर देने से चार्वाकों के लिए ईश्वर मानने की जरूरत ही नहीं होती।
- चार्वाक दार्शनिक आदिम तथा अन्तिम पुरुषार्थों के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते।
- चार्वाक लोग स्वर्ग को स्वीकार नहीं करते। जब स्वर्ग नामक सुख प्रधान ही लोक है, तब उसके शरीर को तरह-तरह का क्लेश देकर तपस्या करना तथा द्रव्य का व्यय उठा कर यज्ञानुष्ठान करना एकदम व्यर्थ है।
- चार्वाकों ने वैदिक धर्म की कड़ी आलोचना की है।
- चार्वाकों के अनुसार किसी कपोलकल्पित पारलौकिक सुख की प्राप्ति के लिए जीव विशेष की हत्या कर योग-साधना करना पहले दर्जे की मूर्खता है।

- चार्वाक कहते हैं यदि श्राद्ध करने से मरे हुए जन्तुओं की तृप्ति होती, तो तेल डालने से बुझे हुए दीपक की शिखा भी बढ़ती। अतः मृतक की तृप्ति के लिए श्राद्ध करने की कल्पना नितान्त निराधार है।
- चार्वाक लोग वेद-विधानों को कपोलकल्पना सिद्ध करने के लिए बड़े-बड़े लौकिक दृष्टान्त उपस्थित करते हैं। वे धर्म तथा अधर्म में न तो विश्वास करते है और न पाप-पुण्य के फल को अङ्गीकार करते हैं।
- चार्वाकों के अनुसार प्रत्येक क्लेश का निकेतन यही भोगायतन शरीर है। इस शरीर के पतन के साथ ही दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति सिद्ध हो जाती है।
- चार्वाक लोग- **मरणमेवापवर्गः** (बृ.सू.) मरण को अपवर्ग मानते हैं।
- चार्वाकों के अनुसार काम ही प्रधान पुरुषार्थ है और तत्-सहायक होने से अर्थ भी। प्राणिमात्र के लिए जीवन का उद्देश्य होना चाहिए ऐहिक सुख की प्राप्ति।
- चार्वाकों का यह कथन सर्वत्र प्रसिद्ध है कि जब तक जीएँ, सुखपूर्वक जीएँ। अपने पास द्रव्य न होने पर ऋण लेकर घृत पीएँ, ऋण लौटाने की व्यर्थ चिन्ता न करें क्योंकि शरीर के भस्म हो जाने पर भला जीव का पुनरागमन कहाँ होता है?
  यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
  भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥
- चार्वाकों के अनुसार खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ-यही जीवन का आत्यन्तिक लक्ष्य है। दुःख से मिश्रित होने से सुख त्याज्य नहीं है? विशुद्ध सुख की सत्ता जगत् में नही है।

चार्वाकों के अनुसार

- जिस प्रकार मछली खानेवाला कण्टक-युक्त मछलियों को ग्रहण कर ग्राह्यांश को ले लेता है और अन्य अंश को छोड़ देता है उसी प्रकार सुखार्थी दुःख से मिश्रित सुख को ग्रहण करता है और उपादेय भाग को लेकर ही तृप्ति-लाभ करता है।
- चार्वाकों का मानना है कि 'विषय के संगम से उत्पन्न सुख,दुःख के साथ होने से त्याज्य है' -यह मूर्खों का विचार है।
- चार्वाकों के अनुसार जीवन भोगविलास के साथ सुख की प्राप्ति में बिताना चाहिए। स्वर्ग-नरक तो इसी जगत् में विद्यमान है।
- सांसारिक सुखवाद चार्वाकों के अनुसार प्राणिमात्र का प्रधान लक्ष्य है।

  * विभिन्न ग्रन्थों में बृहस्पति के सूत्र ही चार्वाकों के सिद्धान्त रूप में प्राप्त होते हैं जिनका हम बिन्दुवार अध्ययन करेंगे।

चार्वाकों के प्रमुख सिद्धान्त (बृहस्पति के सूत्रानुसार)

1. **'अथातः तत्त्वं व्याख्यास्यामः।** अब हम इस मत के तत्त्वों को निरूपित करेंगे।
2. **'पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति तत्त्वानि।'** ये चार तत्त्व हैं- पृथ्वी, जल, तेज, वायु।
3. **'तत्समुदाये शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञा'** इन्हीं भूतों के संगठित स्वरूप को शरीर, इन्द्रिय तथा विषय यह संज्ञा दी गयी है।

4. **'तेभ्यश्चैतन्यम्'** चैतन्य की उत्पत्ति इन्ही भूतों के संगठन से होती है।
5. **'किण्वादिभ्यो मदशक्तिवद् विज्ञानम्'** जिस प्रकार किण्वन प्रक्रिया से अन्नों के संगठन से माठक शक्ति उत्पन्न होती है उसीप्रकार इन भूतों के संगठन से विज्ञान (चैतन्य) उत्पन्न होता है।
6. **'भूतान्येव चेतयन्ते'** भूतों द्वारा ही चैतन्य को उत्पन्न किया जाता है।
7. **'चैतन्यविशिष्टः कायः पुरुषः'** चैतन्य से युक्त स्थूल शरीर ही 'आत्मा' है।
8. **'जलबुद्बुद्वज्जीवाः'** जल के ऊपर जिस प्रकार बुलबुले दिखाई पड़ते हैं और शीघ्र ही स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं, जीव भी उसी प्रकार हैं।
9. **'परलोकिनोऽभावात् परलोकाभावः'** परलोक में रहने वाले कोई नहीं होते वास्तव में परलोक का अभाव है।
10. **'मरणमेवापवर्गः'** मृत्यु होना ही मोक्ष है।
11. **'धूर्तप्रलापस्त्रयी स्वर्गोत्पादकत्वेन विशेषाभावात्'** स्वर्ग सुख की इच्छा करना धूर्तों के प्रलापजन्य सुख से अलग नही है, अतः स्वर्ग सुख को निरूपित करने वाले तीनों 'वेद' धूर्तों के प्रलाप ही हैं।
12. **'अर्थकामौ पुरुषार्थौ'** दो पुरुषार्थ अर्थ और काम ही हैं।
13. **'दण्डनीतिरेव विद्या, अत्र वार्ता अन्तर्भवति।** एक मात्र विद्या राजनीति ही है। उसी में कृषिशास्त्र भी सम्मिलित है।
14. **'प्रत्यक्षमेव प्रमाणम्'** एक मात्र प्रमाण 'प्रत्यक्ष' ही है।
15. **'लौकिको मार्गोऽनुसर्तव्यः'** सामान्य लोगों के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए

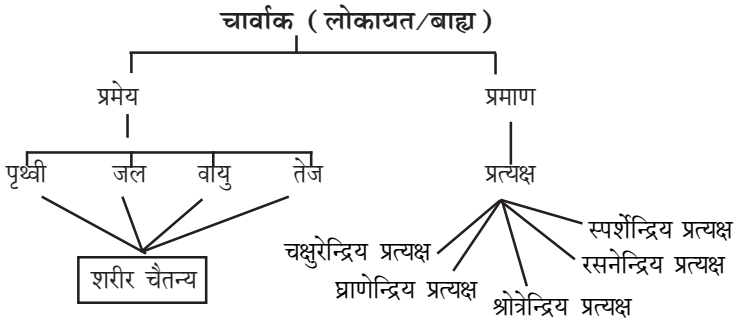

❑❑